

SKPF-Wincompete Test Series 2026

खण्ड 4: भारतीय संविधान और राजव्यवस्था (पाठ्य सामग्री)

Test 14 - भारतीय संविधान -संवैधानिक विकास व सिद्धांत

अध्याय 1: भारत शासन अधिनियम 1919: द्वैध शासन (Dyarchy) का प्रांतीय प्रयोग और विनियामक विन्यास

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड घोषणा

प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) के दौरान उपजी वैश्विक राजनीतिक परिस्थितियों और भारत में स्वशासन की बढ़ती मांग के दबाव में ब्रिटिश सरकार को अपनी औपनिवेशिक नीति में परिवर्तन करना पड़ा। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण विनियामक कदम 20 अगस्त 1917 को तत्कालीन भारत सचिव एडविन मोंटेग्यू द्वारा हाउस ऑफ कॉमन्स में की गई घोषणा थी, जिसे 'मोंटेग्यू घोषणा' कहा जाता है। इस घोषणा का प्राथमिक विधिक उद्देश्य भारत में उत्तरदायी सरकार की क्रमिक स्थापना करना था। इस घोषणा को क्रियान्वित करने के लिए भारत सचिव मोंटेग्यू और वायसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने एक विस्तृत प्रतिवेदन तैयार किया, जो 1918 में प्रकाशित हुआ। इसी प्रतिवेदन के आधार पर ब्रिटिश संसद ने 'भारत शासन अधिनियम 1919' पारित किया, जिसे 'मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार' भी कहा जाता है। यह अधिनियम तत्कालीन समय में ब्रिटिश भारत के प्रशासनिक और विधायी ढांचे में एक युगांतरकारी विवर्तनिक मोड़ सिद्ध हुआ।

अधिनियम के मूल दार्शनिक आधार और प्रस्तावना

भारत शासन अधिनियम 1919 की एक अपनी पृथक और विस्तृत प्रस्तावना थी, जो इसके विधिक और प्रशासनिक दर्शन को स्पष्ट करती थी। इस प्रस्तावना में निम्नलिखित मुख्य सिद्धांतों को विधिक रूप से रेखांकित किया गया था:

- **ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग:** भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अभिन्न अंग रहेगा।
- **क्रमिक उत्तरदायी शासन:** भारत में स्वशासी संस्थाओं का क्रमिक विकास किया जाएगा ताकि अंततः एक पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की जा सके।
- **प्रांतीय स्वायत्तता का प्रारंभ:** प्रांतों को केंद्रीय नियंत्रण से यथासंभव विमुक्त कर उन्हें प्रशासन और कानून निर्माण के क्षेत्र में सीमित स्वायत्तता प्रदान की जाएगी।
- **समय-समय पर समीक्षा:** इस प्रगति की समीक्षा करने और शासन के क्रमिक चरणों का निर्धारण करने का विधिक अधिकार ब्रिटिश संसद के पास सुरक्षित रहेगा।

केंद्रीय विनियामक ढांचा: कार्यपालिका और विधायी परिवर्तन

1919 के अधिनियम द्वारा केंद्रीय स्तर पर उत्तरदायी शासन की स्थापना तो नहीं की गई, परंतु विधायी विन्यास में व्यापक संरचनात्मक परिवर्तन किए गए। केंद्र में गवर्नर-जनरल (वायसराय) की निरंकुश शक्तियों को बनाए रखा गया, लेकिन उसकी कार्यकारी परिषद और व्यवस्थापिका में महत्वपूर्ण विस्तार किया गया।

वायसराय की कार्यकारी परिषद (Viceroy's Executive Council)

गवर्नर-जनरल की आठ सदस्यीय कार्यकारी परिषद में से तीन भारतीय सदस्यों का होना विधिक रूप से अनिवार्य कर दिया गया। इन भारतीय सदस्यों को कानून, शिक्षा, श्रम, स्वास्थ्य और उद्योग जैसे विभाग सौंपे गए, जबकि सबसे महत्वपूर्ण विभाग (जैसे गृह, वित्त और रक्षा) अभी भी ब्रिटिश सदस्यों के नियंत्रण में ही रहे।

द्विसदनीय केंद्रीय विधायिका (Bicameral Central Legislature)

इस अधिनियम द्वारा पहली बार केंद्र में एक अनुपातिक द्विसदनीय व्यवस्थापिका स्थापित की गई, जिसने पूर्ववर्ती केंद्रीय विधान परिषद का स्थान लिया। इसके दो सदन निम्नानुसार थे:

1. **राज्य परिषद (Council of State - उच्च सदन):** इसमें कुल 60 सदस्य होते थे, जिनमें से 34 निर्वाचित और 26 मनोनीत (सरकारी और गैर-सरकारी) होते थे। इसका कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित था और इसके सदस्य केवल पुरुष ही हो सकते थे (महिलाओं को मतदान या सदस्यता का विधिक अधिकार नहीं था)।
2. **केंद्रीय विधानसभा (Legislative Assembly - निम्न सदन):** इसमें कुल 145 सदस्य थे, जिनमें से 104 निर्वाचित और 41 मनोनीत थे। इसका कार्यकाल 3 वर्ष का था।

सारणी 1.1: केंद्रीय विधायिका की संरचनात्मक बनावट

सदन का नाम	कुल सदस्य	निर्वाचित सदस्य	मनोनीत सदस्य	विधिक कार्यकाल
राज्य परिषद (उच्च सदन)	60	34	26	5 वर्ष
केंद्रीय विधानसभा (निम्न सदन)	145	104	41	3 वर्ष

केंद्रीय विधायी शक्तियों का विन्यास और गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार

केंद्रीय विधायिका को पूरे ब्रिटिश भारत के लिए कानून बनाने की व्यापक शक्तियां दी गईं, परंतु यह विधायिका संप्रभु नहीं थी। गवर्नर-जनरल को अत्यधिक टो वीटो और विधायी वीक्षण शक्तियां प्राप्त थीं:

- **प्रमाणन की शक्ति (Certification Power):** यदि केंद्रीय विधायिका किसी ऐसे विधेयक को अस्वीकार कर देती थी जिसे गवर्नर-जनरल भारत की सुरक्षा या शांति के लिए आवश्यक समझता था, तो गवर्नर-जनरल अपने विशेष विधिक अधिकार से उसे कानून के रूप में प्रमाणित कर सकता था।
- **अध्यादेश जारी करना:** वह विधायिका के सत्रावसान की स्थिति में 6 महीने की अवधि के लिए अध्यादेश जारी कर सकता था, जिसका विधिक प्रभाव संसद के कानून के बराबर होता था।
- **बजट पर नियंत्रण:** केंद्रीय बजट के लगभग 65% हिस्से पर केंद्रीय विधायिका को मतदान करने का विधिक अधिकार नहीं था।

केंद्रीय और प्रांतीय विषयों का विभाजन: विकेंद्रीकरण का विधिक सूत्रपात

इस अधिनियम द्वारा प्रशासनिक और विधायी कार्यों को सुव्यवस्थित करने के लिए शक्तियों का केंद्रीय और प्रांतीय सूची में स्पष्ट विभाजन किया गया। यह भारत में वित्तीय और विधायी विकेंद्रीकरण की दिशा में एक बड़ा कदम था।

- **केंद्रीय विषय:** इसके अंतर्गत राष्ट्रीय महत्व के विषयों को रखा गया, जैसे रक्षा, वैदेशिक मामले, रेल, डाक-तार, सीमा शुल्क, मुद्रा, सिक्का निर्माण, वाणिज्य और दीवानी व फौजदारी कानून।
- **प्रांतीय विषय:** इसके अंतर्गत स्थानीय महत्व के विषयों को सम्मिलित किया गया, जैसे जनस्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन, शिक्षा, चिकित्सा, कृषि, लोक निर्माण (PWD), जल संसाधन, अकाल सहायता, भूमि राजस्व और पुलिस।

सारणी 1.2: विषयों का केंद्रीय और प्रांतीय वर्गीकरण

सूची का प्रकार	विनिर्दिष्ट विषय (उदाहरण)	प्रशासनिक नियंत्रण
केंद्रीय सूची	रक्षा, विदेश मामले, रेलवे, डाक-तार, मुद्रा, आयकर	गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद
प्रांतीय सूची	स्थानीय स्वशासन, शिक्षा, स्वास्थ्य, पुलिस, भू-राजस्व	प्रांतीय गवर्नर और उत्तरदायी मंत्री

प्रांतीय स्तर पर द्वैध शासन (Dyarchy) का प्रयोग

'द्वैध शासन' शब्द ग्रीक भाषा के 'Di-arche' से बना है, जिसका अर्थ होता है 'दोहरा शासन'। प्रांतीय स्तर पर कार्यपालिका को दो स्वतंत्र भागों में विभाजित करना ही इस अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण और विवादास्पद प्रयोग था। इस प्रणाली के जन्मदाता लियोनेल कर्टिस थे, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'डायार्की' में इसका विस्तार से वर्णन किया था।

प्रांतीय सूची के विषयों को दो विधिक उप-वर्गों में विभाजित किया गया: '**आरक्षित विषय**' (Reserved Subjects) और '**हस्तांतरित विषय**' (Transferred Subjects)।

1. आरक्षित विषय (Reserved Subjects)

इन विषयों का प्रशासन प्रांतीय गवर्नर अपनी कार्यकारी परिषद (Executive Council) के सदस्यों की सहायता से करता था। ये सदस्य प्रांतीय विधानमंडल के प्रति विधिक रूप से उत्तरदायी नहीं होते थे। इसके अंतर्गत प्रांत के सबसे महत्वपूर्ण और वित्तीय प्रभाव वाले विषय रखे गए:

- न्याय प्रशासन, पुलिस, जेल, भूमि राजस्व, सिंचाई, वन, अकाल सहायता, वित्त, कारखाना अधिनियम और समाचार पत्र।

2. हस्तांतरित विषय (Transferred Subjects)

इन विषयों का प्रशासन प्रांतीय गवर्नर उन भारतीय मंत्रियों की सलाह से करता था जो प्रांतीय विधान परिषद के निर्वाचित सदस्य होते थे और सदन के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते थे। इसके अंतर्गत कम महत्वपूर्ण और कम बजट वाले सामाजिक विषय रखे गए:

- स्थानीय स्वशासन, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सा सहायता, कृषि, सार्वजनिक निर्माण, उद्योग, आबकारी, तथा माप-तौल।

सारणी 1.3: प्रांतीय द्वैध शासन का प्रशासनिक विभाजन

विषय वर्ग	विषय सूची (मुख्य उदाहरण)	प्रशासनिक प्राधिकारी	विधायिका के प्रति उत्तरदायित्व
आरक्षित विषय	वित्त, भूमि राजस्व, पुलिस, न्याय, सिंचाई, जेल	गवर्नर + कार्यकारी परिषद	विधिक रूप से उत्तरदायी नहीं
हस्तांतरित विषय	शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन, कृषि	गवर्नर + निर्वाचित भारतीय मंत्री	पूर्ण रूप से उत्तरदायी (जवाबदेह)

सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का विस्तार और मताधिकार का विन्यास

वर्ष 1909 के मॉर्ले-मिंटो सुधारों द्वारा प्रारंभ की गई पृथक सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली का 1919 के अधिनियम द्वारा और अधिक विस्तार किया गया। यह ब्रिटिश सरकार की 'बांटो और राज करो' (Divide and Rule) की नीति का विधिक सुदृढीकरण था।

निर्वाचन प्रणाली का सांप्रदायिक विस्तार

अब पृथक निर्वाचन मंडल का अधिकार न केवल मुसलमानों को, बल्कि निम्नलिखित समुदायों को भी दे दिया गया:

- **सिखों को** (विशेष रूप से पंजाब में)
- **भारतीय ईसाइयों को**
- **एंग्लो-इंडियन्स (आंग्ल-भारतीयों) को**
- **यूरोपियनों को**

सीमित और संपत्ति-आधारित मताधिकार

इस अधिनियम द्वारा मताधिकार को अत्यधिक सीमित रखा गया। मतदान का विधिक अधिकार सार्वभौमिक नहीं था, बल्कि यह संपत्ति, कर अदायगी और शैक्षणिक योग्यता पर आधारित था। तत्कालीन ब्रिटिश भारत की कुल जनसंख्या का मात्र लगभग 2.8% से 3% हिस्सा ही मतदान करने के योग्य माना गया। महिलाओं को कुछ प्रांतों में सीमित रूप से मतदान का अधिकार देने की अनुमति प्रांतीय विधान परिषदों को सौंपी गई थी।

वित्तीय विन्यास और प्रांतीय बजटीय पृथक्करण

1919 के अधिनियम ने भारत में वित्तीय संघवाद की नींव रखी। इस अधिनियम द्वारा पहली बार केंद्रीय बजट को प्रांतीय बजट से विधिक रूप से पृथक कर दिया गया।

- **स्वतंत्र प्रांतीय बजट:** प्रांतीय विधानमंडलों को अपना बजट स्वयं तैयार करने और प्रांतीय कर लगाने का विधिक अधिकार दिया गया।
- **प्रांतीय अंशदान (Provincial Contribution):** चूंकि केंद्रीय सरकार के राजस्व के कुछ स्रोतों का हस्तांतरण प्रांतों को कर दिया गया था, इसलिए केंद्र के वित्तीय घाटे को पूरा करने के लिए प्रांतों द्वारा केंद्र को एक निश्चित वित्तीय अंशदान देना तय किया गया, जिसे 'मेस्टन योजना' (Meston Scheme) के नाम से जाना जाता है।

विशिष्ट विनियामक संस्थाओं की स्थापना का प्रावधान

इस अधिनियम में भारत के प्रशासनिक ढांचे को आधुनिक और संस्थागत रूप देने के लिए कई महत्वपूर्ण विनियामक निकायों की स्थापना के वैधानिक बीज बोए गए:

1. **केंद्रीय लोक सेवा आयोग (Central Public Service Commission):** अधिनियम की धारा 96-C के तहत भारत में सिविल सेवकों की भर्ती के लिए एक निष्पक्ष लोक सेवा आयोग की स्थापना का प्रावधान किया गया। इसी के परिणामस्वरूप आगे चलकर वर्ष 1926 में 'ली आयोग' (Lee Commission) की सिफारिशों पर भारत के प्रथम लोक सेवा आयोग का गठन हुआ।
2. **शाही नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (Auditor-General):** भारत में वित्तीय पारदर्शिता और शासकीय व्यय की विधिक संवीक्षा सुनिश्चित करने के लिए महालेखा परीक्षक के पद को वैधानिक स्वायत्तता प्रदान की गई।
3. **नरेश मंडल (Chamber of Princes):** देशी रियासतों के शासकों को एक मंच प्रदान करने के लिए वर्ष 1921 में 'चैम्बर ऑफ प्रिंसेस' (नरेश मंडल) की स्थापना की गई, जिसका चांसलर बीकानेर के महाराजा गंगा सिंह को बनाया गया था।
4. **हाई कमिश्नर (उच्चायुक्त) की नियुक्ति:** लंदन में भारत के लिए एक नए अधिकारी 'भारतीय उच्चायुक्त' (High Commissioner for India) के पद का सृजन किया गया, जिसे भारत सचिव के कुछ व्यापारिक और प्रशासनिक कार्य हस्तांतरित कर दिए गए।

द्वैध शासन प्रणाली की विनियामक विफलता के कारण

प्रांतीय स्तर पर लागू की गई द्वैध शासन प्रणाली सैद्धांतिक रूप से जितनी आकर्षक लगती थी, व्यावहारिक रूप से उतनी ही अतार्किक और दोषपूर्ण सिद्ध हुई। वर्ष 1921 से 1937 तक चली यह व्यवस्था अपनी अंतर्निहित विधिक विसंगतियों के कारण विफल हो गई। इसकी विफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित थे:

1. अतार्किक और अव्यावहारिक विषय विभाजन

विषयों का विभाजन किसी वैज्ञानिक या प्रशासनिक सिद्धांत पर आधारित नहीं था, बल्कि वह पूरी तरह अतार्किक था। उदाहरण के लिए, कृषि को एक हस्तांतरित विषय बनाया गया और भारतीय मंत्री को सौंप दिया गया, परंतु कृषि के लिए सबसे महत्वपूर्ण विषय 'सिंचाई' और 'भूमि राजस्व' को आरक्षित विषय के रूप में गवर्नर की कार्यकारी परिषद के पास रखा गया। इसी प्रकार, उद्योग विभाग मंत्री के पास था, लेकिन कारखाने, श्रम और बिजली जैसे संबद्ध विषय आरक्षित सूची में थे। मद्रास के एक तत्कालीन मंत्री के.वी. रेड्डी ने कहा था: "मैं बिना सिंचाई के कृषि मंत्री था, बिना कारखानों के उद्योग मंत्री था।"

2. वित्त पर मंत्रियों का कोई विधिक नियंत्रण नहीं

प्रशासनिक तंत्र में वित्त को रीढ़ की हड्डी माना जाता है। वित्त विभाग को एक 'आरक्षित विषय' बनाया गया था, जिसका नियंत्रण गवर्नर के कार्यकारी पार्षद (ब्रिटिश अधिकारी) के पास था। भारतीय मंत्रियों को अपनी लोक कल्याणकारी योजनाओं (जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य) को लागू करने के लिए वित्त विभाग के सामने याचना करनी पड़ती थी। अधिकांश वित्तीय आवंटन आरक्षित विषयों (पुलिस और जेल) को दे दिए जाते थे और हस्तांतरित विषयों के लिए धन की भारी कमी बनी रहती थी।

3. सिविल सेवा पर मंत्रियों के प्रशासनिक नियंत्रण का अभाव

हस्तांतरित विभागों के अंतर्गत काम करने वाले परिनियत सिविल सेवक (ICS अधिकारी) मंत्रियों के प्रति जवाबदेह नहीं थे। वे सीधे गवर्नर और उसकी कार्यकारी परिषद के प्रति जवाबदार होते थे। यदि किसी भारतीय मंत्री और एक गोरे आई.सी.एस. सचिव के बीच किसी नीतिगत विषय पर मतभेद होता था, तो सचिव सीधे गवर्नर के पास जाता था और गवर्नर अमूमन सचिव के निर्णय को ही विधिक रूप से मान्य करता था। इससे मंत्रियों की प्रशासनिक स्थिति अत्यंत कमजोर हो गई थी।

4. मंत्रियों का सामूहिक उत्तरदायित्व का अभाव

प्रांतों में नियुक्त मंत्री किसी एक राजनीतिक दल या विचारधारा के नहीं होते थे। गवर्नर अपनी मर्जी से अलग-अलग गुटों से मंत्रियों का चयन करता था। इस कारण मंत्रियों के बीच सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना का पूर्णतः अभाव था। वे संयुक्त रूप से विधान परिषद के प्रति जवाबदेह होने की बजाय व्यक्तिगत रूप से गवर्नर को प्रसन्न रखने का प्रयास करते थे।

5. गवर्नर की निरंकुश और अबाधित विधिक शक्तियां

हस्तांतरित विषयों के संबंध में भी गवर्नर को मंत्रियों की सलाह को खारिज करने का पूर्ण विधिक अधिकार था। वह मंत्रियों द्वारा पारित किसी भी विधेयक को वीटो कर सकता था या उसे गवर्नर-जनरल के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता था। वह विधान परिषद की सहमति के बिना भी अनुदान मांगों को बहाल कर सकता था।

अधिनियम का समीक्षात्मक मूल्यांकन और विधिक सीमाएं

भारत शासन अधिनियम 1919 ने भारत के संवैधानिक इतिहास को गहरी विधिक सीमाएं प्रदान कीं:

- **केंद्रीय निरंकुशता का बने रहना:** केंद्र में कार्यपालिका को विधायिका से पूरी तरह स्वतंत्र रखा गया। बजट का बहुमत गैर-मतदान योग्य था, जिससे लोकतांत्रिक नियंत्रण स्थापित नहीं हो सका।
- **सांप्रदायिक तुष्टीकरण का वैधानिक विस्तार:** सिखों, ईसाइयों और एंग्लो-इंडियन्स को पृथक निर्वाचन देकर राष्ट्रीय एकता के विखंडन को विधिक रूप से संस्थागत रूप दिया गया।
- **उत्तरदायी शासन का भ्रम:** प्रांतों में जो उत्तरदायित्व दिया गया, वह वित्त और प्रशासनिक शक्ति के बिना मात्र एक ढांचा था।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली विन्यास

इस अधिनियम की संरचना और विनियामक विन्यासों को समझने के लिए निम्नलिखित विशिष्ट वैधानिक शब्दावलियों का ज्ञान आवश्यक है:

- **द्वैध शासन (Dyarchy):** एक ही प्रशासनिक इकाई (प्रांत) के भीतर दो समांतर शासकों (गवर्नर की कार्यकारी परिषद और भारतीय मंत्रियों) द्वारा पृथक-पृथक विषयों पर शासन करने की विधिक व्यवस्था।
- **हस्तांतरित विषय (Transferred Subjects):** प्रांतीय सूची के वे विषय जिनका प्रशासन निर्वाचित लोक प्रतिनिधियों (मंत्रियों) के माध्यम से चलाया जाता था और जो व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे।
- **आरक्षित विषय (Reserved Subjects):** प्रांतीय सूची के वे विषय जिनका प्रशासन बिना किसी विधायी जवाबदेही के सीधे गवर्नर और उसके मनोनीत पार्षदों द्वारा किया जाता था।
- **प्रमाणन विलेख (Certification):** वायसराय या गवर्नर की वह निरंकुश विधिक शक्ति जिसके तहत वे विधायिका द्वारा अस्वीकृत किसी विधेयक को स्वतः ही विधिक रूप से प्रभावी कानून बना सकते थे।

- **पृथक निर्वाचन मंडल (Separate Electorate):** वह निर्वाचन प्रणाली जिसके अंतर्गत किसी विशिष्ट धार्मिक या सामाजिक समुदाय के प्रतिनिधि का चुनाव केवल उसी समुदाय के मतदाताओं द्वारा किया जाता है।

मुख्य तुलनात्मक विन्यास

भारत शासन अधिनियम 1919 के विनियामक ढांचे को बेहतर ढंग से समझने के लिए इसकी तुलना इससे पूर्ववर्ती अधिनियम (1909) से करना समीचीन होगा।

सारणी 1.4: वर्ष 1909 और वर्ष 1919 के अधिनियमों का संरचनात्मक अंतर

विनियामक आयाम	भारत परिषद अधिनियम 1909 (मार्ले-मिंटो)	भारत शासन अधिनियम 1919 (मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड)
केंद्रीय व्यवस्थापिका	एकसदनीय (केंद्रीय विधान परिषद)	द्विसदनीय (राज्य परिषद और केंद्रीय विधानसभा)
प्रांतीय कार्यपालिका	गवर्नर और उसकी एकीकृत परिषद	द्वैध शासन प्रणाली (आरक्षित और हस्तांतरित विषय)
सांप्रदायिक निर्वाचन	केवल मुस्लिम समुदाय के लिए सीमित	मुस्लिम, सिख, भारतीय ईसाई, आंग्ल-भारतीय और यूरोपीय
शक्तियों का वर्गीकरण	केंद्र और प्रांतों के बीच विषयों का विभाजन अस्पष्ट था	स्पष्ट केंद्रीय और प्रांतीय सूचियों का विधिक निर्माण
बजट निर्माण प्रक्रिया	सदस्य बजट पर चर्चा कर सकते थे, परंतु पृथक प्रांतीय बजट नहीं था	केंद्रीय बजट से प्रांतीय बजट को पूर्णतः विधिक रूप से पृथक किया गया
उत्तरदायी सरकार	उत्तरदायी शासन का कोई लक्ष्य या दार्शनिक आधार नहीं था	प्रस्तावना में 'क्रमिक उत्तरदायी शासन' की स्थापना का विधिक संकल्प

वैधानिक समीक्षा और विधिक संवीक्षा का प्रावधान

इस अधिनियम की धारा 84-A के तहत यह विधिक प्रावधान किया गया था कि अधिनियम के लागू होने के 10 वर्ष बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा एक उच्च स्तरीय वैधानिक आयोग (Statutory Commission) का गठन किया जाएगा। इस आयोग का मुख्य कार्य इस अधिनियम के तहत स्थापित द्वैध शासन प्रणाली के व्यावहारिक परिणामों, शिक्षा के प्रसार और उत्तरदायी सरकार की स्थापना की दिशा में हुई प्रगति की व्यापक विधिक समीक्षा करना था। इसी विशिष्ट कानूनी धारा के अनुपालन में ब्रिटिश सरकार ने समय से दो वर्ष पूर्व ही, नवंबर 1927 में 'साइमन कमीशन' (Simon Commission) का गठन किया, जिसके सभी सात सदस्य ब्रिटिश

अध्याय 2: भारत शासन अधिनियम 1919: द्विसदनीय केंद्रीय विधायिका, बजटीय विभाजन व वैधानिक कमियां

1. केंद्रीय विधायिका का द्विसदनीय विन्यास और संरचनात्मक ढांचा

भारत शासन अधिनियम 1919 के तहत भारतीय संवैधानिक इतिहास में पहली बार केंद्रीय स्तर पर एक अनुपातिक द्विसदनीय (Bicameral) व्यवस्थापिका का गठन किया गया। इस विन्यास ने पूर्ववर्ती 'भारतीय विधान परिषद' (Imperial Legislative Council) के एकसदनीय ढांचे को पूरी तरह विस्थापित कर दिया। नवीन विधायी ढांचे के अंतर्गत दो पृथक सदनों का विन्यास किया गया: **केंद्रीय विधानसभा (Legislative Assembly)** और **राज्य परिषद (Council of State)**।

1.1 केंद्रीय विधानसभा (निम्न सदन)

केंद्रीय विधानसभा का गठन लोकप्रिय निर्वाचित सदन के रूप में किया गया था। इसकी कुल विधिक सदस्य संख्या **145** विनिर्दिष्ट की गई थी, जिसका आंतरिक वर्गीकरण अत्यधिक जटिल आनुपातिक मापदंडों पर आधारित था:

- **निर्वाचित सदस्य:** कुल 104 सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुनकर आते थे। इन 104 निर्वाचित सीटों का क्षेत्रीय और सांप्रदायिक विभाजन इस प्रकार था: 52 सामान्य सीटें, 30 मुसलमानों के लिए आरक्षित सीटें, 9 यूरोपीय नागरिकों के लिए, 7 जमींदारों के लिए, 4 वाणिज्य व उद्योग मंडलों के लिए तथा 2 सिखों के लिए (विशेष रूप से पंजाब प्रांत में)।
- **मनोनीत सदस्य:** कुल 41 सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा विधिक रूप से मनोनीत किए जाते थे, जिनमें से 26 सरकारी अधिकारी और 15 गैर-सरकारी नामांकित सदस्य होते थे।
- **कार्यकाल और प्रशासनिक विन्यास:** केंद्रीय विधानसभा का सामान्य विधिक कार्यकाल **3 वर्ष** निर्धारित था, परंतु गवर्नर-जनरल को इसे समय से पूर्व भंग करने या इसकी अवधि को विधिक रूप से बढ़ाने का अबाधित विशेषाधिकार प्राप्त था।

1.2 राज्य परिषद (उच्च सदन)

राज्य परिषद का गठन एक उच्च और द्वितीयक समीक्षा सदन के रूप में किया गया था, जिसका उद्देश्य कुलीन और विशिष्ट वर्गों को विधायी प्रतिनिधित्व प्रदान करना था। इसकी कुल सदस्य संख्या **60** निश्चित की गई थी:

- **निर्वाचित सदस्य:** कुल 34 सदस्य निर्वाचित होते थे, जिनमें से 20 सामान्य (गैर-सांप्रदायिक), 10 मुस्लिम, 3 यूरोपीय और 1 सिख निर्वाचन क्षेत्र से संबद्ध थे।
- **मनोनीत सदस्य:** कुल 26 सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत किए जाते थे, जिनमें 19 सरकारी अधिकारी और 7 गैर-सरकारी व्यक्ति शामिल थे।
- **कार्यकाल और विशिष्टताएं:** राज्य परिषद का सामान्य विधिक कार्यकाल **5 वर्ष** निर्धारित था। इस सदन की सदस्यता और मताधिकार के विधिक मापदंड अत्यधिक कठोर थे। केवल उच्च संपत्ति धारक, भारी भू-राजस्व चुकाने वाले जमींदार और पूर्व विधानमंडलों के सदस्य ही इसके पात्र थे। इस सदन में महिलाओं को सदस्यता प्राप्त करने का कोई विधिक वैधानिक अधिकार नहीं दिया गया था।

2. निर्वाचन प्रणाली का सांप्रदायिक विस्तार और सामाजिक विखंडन

वर्ष 1919 के अधिनियम ने मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के विधिक क्रियान्वयन के माध्यम से सांप्रदायिक निर्वाचन मंडल (Separate Electorate) के दायरे को अत्यधिक विस्तृत कर दिया। यह औपनिवेशिक प्रशासनिक नीति के तहत भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को सामाजिक आधार पर विखंडित करने का एक रणनीतिक वैधानिक प्रयास था।

- **सांप्रदायिक पृथक्करण का विस्तार:** वर्ष 1909 के अधिनियम द्वारा केवल मुस्लिम समुदाय को दिए गए पृथक निर्वाचन के सिद्धांत को आगे बढ़ाते हुए अब इसे चार नए सामाजिक-धार्मिक वर्गों पर भी कड़ाई से लागू कर दिया गया:
 1. **सिखों को** (मुख्य रूप से पंजाब प्रांत के कृषि और राजनीतिक भूगोल को प्रभावित करने हेतु)
 2. **भारतीय ईसाइयों को** (Indian Christians)
 3. **आंग्ल-भारतीयों को** (Anglo-Indians)

4. यूरोपीय नागरिकों को (Europeans)

- **अप्रत्यक्ष बनाम प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रवृत्तियाँ:** इस अधिनियम द्वारा केंद्रीय व्यवस्थापिका के दोनों सदनों के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन (Direct Election) की विधा को प्रारंभ किया गया, परंतु मताधिकार को सार्वभौमिक नहीं बनाया गया।

3. सीमित मताधिकार के वैधानिक मापदंड

अधिनियम के तहत मताधिकार (Franchise) का विन्यास अत्यधिक संकुचित, भेदभावपूर्ण और अभिजात्यवादी मापदंडों पर आधारित था। तत्कालीन ब्रिटिश भारत की विशाल जनसांख्यिकी का मात्र **2.8 से 3 प्रतिशत** हिस्सा ही मतदान करने की विधिक योग्यता रखता था।

मताधिकार की विनिर्दिष्ट वैधानिक योग्यताएँ:

- **संपत्तिपरक अर्हता:** वह नागरिक जो स्थानीय शहरी निकायों या ग्रामीण अंचलों में एक न्यूनतम निर्धारित वार्षिक कर (Tax) चुकाता हो।
- **भू-राजस्व मानक:** जो जमींदार या कृषक प्रतिवर्ष एक निश्चित उच्च मात्रा में भूमि राजस्व (Land Revenue) सीधे ब्रिटिश राजकोष में जमा कराता हो। राज्य परिषद (उच्च सदन) के लिए यह सीमा इतनी उच्च थी कि केवल गिने-चुने धनाढ्य ही मतदाता बन सकते थे।
- **शैक्षणिक अर्हता:** विश्वविद्यालय की उपाधि धारक या विशिष्ट फेलोशिप प्राप्त नागरिक ही विधिक रूप से मतदाता सूची में शामिल होने के पात्र माने जाते थे।

4. बजटीय विभाजन और केंद्रीय-प्रांतीय वित्तीय पृथक्करण

भारत शासन अधिनियम 1919 का सबसे युगांतरकारी और दीर्घकालिक विनियामक प्रभाव भारत के वित्तीय प्रशासन पर पड़ा। इस अधिनियम द्वारा पहली बार **केंद्रीय बजट को प्रांतीय बजट से विधिक रूप से पूर्णतः पृथक कर दिया गया।**

- **प्रांतीय बजटीय संप्रभुता का सूत्रपात:** प्रांतीय विधानमंडलों को अपना वार्षिक बजट स्वयं तैयार करने, उसे पारित करने और अपने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर विशिष्ट कर लगाने की वैधानिक शक्ति प्रदान की गई। इसने भारत में 'वित्तीय संघवाद' (Fiscal Federalism) की वास्तविक प्रशासनिक नींव रखी।
- **राजस्व स्रोतों का आनुपातिक विभाजन:** सीमा शुल्क (Customs), आयकर (Income Tax), नमक कर, डाक-तार और रेलवे से प्राप्त होने वाले राजस्व को केंद्रीय सूची के अंतर्गत रखा गया। इसके विपरीत, भूमि राजस्व (Land Revenue), आबकारी (Excise), स्टाम्प ड्यूटी और सिंचाई से होने वाली आय को पूर्णतः प्रांतीय राजस्व का हिस्सा बना दिया गया।

सारणी 2.1: वित्तीय और बजटीय संसाधनों का विभाजन

वित्तीय वर्गीकरण	मुख्य राजस्व स्रोत (इनपुट)	बजटीय नियंत्रण	विधायी अधिकार
केंद्रीय बजट	सीमा शुल्क, आयकर, रेलवे, डाक-तार, नमक कर	गवर्नर-जनरल और कार्यकारी परिषद	केंद्रीय व्यवस्थापिका (सीमित मतदान)
प्रांतीय बजट	भू-राजस्व, सिंचाई शुल्क, आबकारी, अदालती स्टाम्प	प्रांतीय गवर्नर और उत्तरदायी मंत्री	प्रांतीय विधान परिषद (पूर्ण बजटीय स्वायत्तता)

5. मेस्टन योजना और प्रांतीय अंशदान (Provincial Contribution) प्रतिरूप

चूंकि वित्तीय विभाजन के कारण भू-राजस्व और सिंचाई जैसे भारी आय वाले स्रोत प्रांतों को हस्तांतरित कर दिए गए थे, इसलिए प्रारंभ में केंद्रीय सरकार के बजट में एक बड़ा सांख्यिकीय घाटा उत्पन्न हो गया। इस केंद्रीय वित्तीय घाटे की प्रतिपूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा '**मेस्टन समिति**' (Meston Committee) का गठन किया गया।

- **मेस्टन योजना के विधिक प्रावधान:** इस समिति की सिफारिशों के आधार पर एक विशिष्ट 'प्रांतीय अंशदान' का विन्यास तय किया गया। इसके तहत प्रत्येक प्रांत के लिए यह विधिक रूप से अनिवार्य किया गया कि वह अपने कुल राजस्व में से एक निश्चित आनुपातिक राशि प्रतिवर्ष केंद्रीय राजकोष में जमा कराएगा।
- **प्रांतवार सांख्यिकीय भार:** इस योजना के तहत सर्वाधिक वित्तीय भार **मद्रास, संयुक्त प्रांत (UP) और पंजाब** जैसे कृषि-प्रधान प्रांतों पर डाला गया। इस नीतिगत निर्णय के कारण प्रांतों के पास अपनी लोक कल्याणकारी योजनाओं (जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य) को लागू करने के लिए शुद्ध बजटीय तरलता (Liquidity) की भारी कमी हो गई, जिससे प्रांतों में गहरा प्रशासनिक असंतोष फैला।

6. केंद्रीय विधायिका की कार्यप्रणाली और बजटीय विसंगतियां

केंद्रीय व्यवस्थापिका को विधायी शक्तियां तो दी गई थीं, परंतु वित्तीय मामलों में उसके कपाट पूरी तरह संकीर्ण और गवर्नर-जनरल के नियंत्रण में थे। बजट पारित करने की प्रक्रिया लोकतांत्रिक सिद्धांतों के सर्वथा विपरीत थी।

- **गैर-मतदान योग्य बजट (Non-Voteable Budget):** केंद्रीय बजट को दो भागों में विभाजित किया गया था। **बजट का लगभग 65% से 70% हिस्सा पूरी तरह 'गैर-मतदान योग्य' (Non-Voteable) श्रेणी में रखा गया था।** इसके अंतर्गत रक्षा (सैन्य व्यय), ऋण पर ब्याज, गोरे सिविल सेवकों के वेतन और भत्ते तथा राजनीतिक विभागों के व्यय शामिल थे। केंद्रीय व्यवस्थापिका इस भारी बजटीय हिस्से पर न तो कोई कटौती प्रस्ताव ला सकती थी और ना ही इस पर मतदान कर सकती थी।
- **सीमित विधायी मतदान:** व्यवस्थापिका केवल शेष 30-35% बजटीय मांगों पर ही चर्चा और मतदान कर सकती थी, जो मुख्य रूप से डाक-तार, स्टेशनरी और नागरिक सुविधाओं जैसे कम महत्व के विभागों से संबद्ध थे।

7. गवर्नर-जनरल की निरंकुश और अबाधित विधायी शक्तियां

इस अधिनियम के तहत निर्मित द्विसदनीय व्यवस्थापिका किसी भी अर्थ में एक संप्रभु या सर्वोच्च संस्था नहीं थी। गवर्नर-जनरल (वायसराय) कार्यपालिका का वास्तविक और विधिक रूप से निरंकुश प्रधान बना रहा। उसके पास व्यवस्थापिका के प्रत्येक विधिक निर्णय को पलटने की अबाधित वैधानिक शक्तियां सुरक्षित थीं:

- **प्रमाणन की विधिक शक्ति (Power of Certification):** यदि केंद्रीय विधानसभा या राज्य परिषद किसी ऐसे विधायी विधेयक या बजटीय अनुदान मांग को अस्वीकार कर देती थी जिसे गवर्नर-जनरल ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा या वाणिज्यिक हितों के लिए आवश्यक समझता था, तो वह अपने विशेष विधिक अधिकार से उसे स्वतः ही कानून के रूप में प्रमाणित कर सकता था।
- **विशेषाधिकार युक्त टो वीटो (Veto Power):** विधायिका के दोनों सदनों द्वारा सर्वसम्मति से पारित किसी भी विधेयक को गवर्नर-जनरल पूरी तरह वीटो (अस्वीकार) कर सकता था, अथवा उसे ब्रिटिश क्राउन के विचारार्थ विधिक रूप से सुरक्षित रख सकता था।
- **अध्यादेश जारी करने की आपातकालीन गतिकी:** गवर्नर-जनरल को व्यवस्थापिका के सत्र में न होने की स्थिति में, या किसी भी आपातकालीन परिस्थिति में सीधे अध्यादेश (Ordinances) प्रख्यापित करने का पूर्ण अधिकार था। यह अध्यादेश 6 महीने की अवधि के लिए विधिक रूप से संसद के अधिनियम के समतुल्य प्रभावी माना जाता था।

8. अधिनियम की अंतर्निहित वैधानिक और ढांचागत कमियां

भारत शासन अधिनियम 1919 का द्विसदनीय और बजटीय विन्यास कई ऐसी अंतर्निहित विधिक विसंगतियों और कमियों से ग्रसित था, जिसके कारण यह भारत की जनसांख्यिकी को वास्तविक उत्तरदायी शासन देने में पूरी तरह विफल रहा:

8.1 केंद्र में उत्तरदायित्व का पूर्ण अभाव

प्रांतों में तो 'द्वैध शासन' के माध्यम से आंशिक जवाबदेही का प्रयोग किया गया, परंतु **केंद्रीय स्तर पर गवर्नर-जनरल और उसकी कार्यकारी परिषद को केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति पूरी तरह गैर-जवाबदेह (Unaccountable) बनाए रखा गया।** व्यवस्थापिका अविश्वास प्रस्ताव पारित करके भी वायसराय या उसके किसी पार्षद को पद से विस्थापित नहीं कर सकती थी।

8.2 कार्यपालिका की विधायी संप्रभुता पर चोट

गवर्नर-जनरल की प्रमाणन और अध्यादेश जारी करने की निरंकुश शक्तियों ने निर्वाचित लोक प्रतिनिधियों के विधायी महत्व को शून्य कर दिया था। विधायिका द्वारा खारिज किए गए बजटों को वायसराय अपनी 'बहाली की विधिक शक्ति' (Power of Restoration) द्वारा स्वतः ही पास कर लेता था।

8.3 सांप्रदायिक निर्वाचन मंडल द्वारा राष्ट्रीय विखंडन

निर्वाचन प्रणाली में सिखों, ईसाइयों और एंग्लो-इंडियन्स को शामिल करके ब्रिटिश सरकार ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना और साझा राजनैतिक मंचों को पूरी तरह खंडित कर दिया। इससे भविष्य के सांप्रदायिक विभाजनों का वैधानिक मार्ग प्रशस्त हुआ।

8.4 बजट नियंत्रण का ढांचागत विरोधाभास

व्यवस्थापिका को कानून बनाने का अधिकार तो दिया गया, परंतु उस कानून को लागू करने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों (बजट आवंटन) पर उसका कोई विधिक नियंत्रण नहीं था। सेना और गृह जैसे विभागों पर लोक नियंत्रण न होने के कारण यह व्यवस्था एक विधिक भ्रम मात्र सिद्ध हुई।

9. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **द्विसदनीय व्यवस्थापिका (Bicameralism):** विधायी ढांचे का वह प्रतिरूप जिसमें कानून निर्माण के लिए दो स्वतंत्र सदनों (जैसे केंद्रीय विधानसभा और राज्य परिषद) का विन्यास पाया जाता है।
- **गैर-मतदान योग्य व्यय (Non-Voteable Expenditure):** सरकारी बजट का वह भाग जिस पर संसद या व्यवस्थापिका को मतदान करने का विधिक अधिकार नहीं होता और जो सीधे संचित निधि पर भारित माना जाता है।
- **प्रमाणन विलेख (Certification Deed):** गवर्नर-जनरल की वह निरंकुश वैधानिक शक्ति जिसके द्वारा वह विधायिका द्वारा नामंजूर किए गए किसी भी विषय या विधेयक को स्वतः विधिक रूप से प्रभावी कानून घोषित कर सकता था।
- **प्रांतीय अंशदान (Meston Scheme):** मेस्टन समिति की वह विशिष्ट वित्तीय योजना जिसके तहत प्रांतों को अपने राजस्व का एक निश्चित सांख्यिकीय भाग केंद्रीय राजकोष के घाटे को पूरा करने हेतु विधिक रूप से सौंपना पड़ता था।
- **सांप्रदायिक निर्वाचन मंडल (Separate Electorate):** वह संकीर्ण मताधिकार प्रणाली जिसके अंतर्गत किसी विशिष्ट धार्मिक या सामाजिक वर्ग के मतदाता केवल अपने ही वर्ग के प्रत्याशी को विधिक रूप से चुन सकते हैं।
- **अध्यादेश (Ordinance):** कार्यपालिका के प्रधान (वायसराय) द्वारा आपातकाल में जारी किया जाने वाला वह तात्कालिक विलेख जो विधायी प्रक्रिया के बिना ही कानून का दर्जा रखता है।

10. 1919 के अधिनियम के विधायी ढांचे का समेकित सांख्यिकीय एवं तुलनात्मक विन्यास

सारणी 2.2: केंद्रीय विधानसभा बनाम राज्य परिषद के संरचनात्मक मापदंड

विधायी तुलनात्मक संकेतक	केंद्रीय विधानसभा (निम्न सदन)	राज्य परिषद (उच्च सदन)
कुल विधिक सदस्य संख्या	145 सदस्य	60 सदस्य
निर्वाचित सीटों का आयतन	104 सदस्य (सांप्रदायिक व सामान्य विभाजन)	34 सदस्य
मनोनीत सदस्यों का अनुपात	41 सदस्य (26 सरकारी व 15 गैर-सरकारी)	26 सदस्य (19 सरकारी व 7 गैर-सरकारी)

निर्धारित सामान्य कार्यकाल	3 वर्ष (वायसराय द्वारा परिवर्तनीय)	5 वर्ष
मताधिकार का विन्यास	सीमित (कम संपत्ति व कर अदायगी संकेतक)	अत्यधिक संकुचित (उच्च जमींदार व कुलीन वर्ग)
लैंगिक सदस्यता पात्रता	पुरुषों के साथ महिलाओं हेतु सीमित कपाट संभव	महिलाओं के लिए सदस्यता पूर्णतः कानूनन वर्जित

11. वित्तीय और विधायी कमियों का प्रशासनिक और राजनीतिक प्रभाव प्रतिरूप

इस अधिनियम की ढांचागत और बजटीय विसंगतियों ने भारत के समकालीन प्रशासनिक भूगोल को गहरे राजनीतिक संकटों की ओर धकेल दिया, जिसका विवरण निम्नलिखित वर्गीकरण द्वारा सुस्पष्ट है:

- **विधायी गतिरोधों की आवृत्ति:** गवर्नर-जनरल द्वारा अपनी 'प्रमाणन की विधिक शक्ति' का बार-बार दुरुपयोग किए जाने के कारण केंद्रीय विधानसभा और कार्यपालिका के मध्य निरंतर गतिरोध उत्पन्न होते रहे। निर्वाचित लोक प्रतिनिधियों द्वारा जनहित में कटौती प्रस्ताव (Reduction Motions) लाए जाते थे, परंतु वायसराय उन्हें अपने विशेष विधिक वीटो द्वारा स्वतः ही बहाल कर लेता था, जिससे विधायी प्रक्रिया की गरिमा समाप्त हो गई।
- **प्रांतीय वित्तीय अवक्रमण (Financial Starvation):** मेस्टन योजना के कड़े प्रावधानों के कारण मद्रास और संयुक्त प्रांत जैसे बड़े कृषि खंडों के बजट का एक बड़ा हिस्सा 'प्रांतीय अंशदान' के रूप में केंद्र को चला जाता था। इसके परिणामस्वरूप प्रांतीय उत्तरदायी मंत्रियों के पास कृषि के आधुनिकीकरण, सिंचाई नहरों के विस्तार और मृदा स्वास्थ्य संवर्धन जैसी प्राथमिक योजनाओं के लिए बजटीय निधियों की चरम कमी हो गई, जिससे कमान क्षेत्रों का विकास पूरी तरह ठप हो गया।
- **राष्ट्रवादी आंदोलनों का उथलापन और प्रतिक्रिया:** इन वैधानिक कमियों और सीमित मताधिकार के विरोध में ही महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन (Non-Cooperation Movement) और कालांतर में चित्तरंजन दास व मोतीलाल नेहरू द्वारा स्वराज पार्टी (Swaraj Party) का गठन कर काउंसिल प्रविष्टि (Council Entry) की नीति अपनाई गई। उनका मूल राजनीतिक उद्देश्य केंद्रीय विधानसभा के भीतर बैठकर इस अधिनियम की बजटीय विसंगतियों को बेनकाब करना और ब्रिटिश साम्राज्य के विनियामक ढांचे को भीतर से विखंडित करना था।

भारत शासन अधिनियम 1919 का द्विसदनीय केंद्रीय विधायी ढांचा और उसका बजटीय विभाजन प्रतिरूप औपनिवेशिक हितों की रक्षा करने वाला एक संकीर्ण विधिक विन्यास था। इस अधिनियम की अंतर्निहित कमियों, गैर-मतदान योग्य बजट के आनुपातिक भार (65-70%) और गवर्नर-जनरल के निरंकुश विशेषाधिकारों का वैज्ञानिक प्रबंधन न होने के कारण यह भारतीय जनसांख्यिकी की स्वशासन की आकांक्षाओं को संतुष्ट करने में पूरी तरह विफल रहा। इसी विफलता के विनियामक विश्लेषण ने आगे चलकर साइमन कमीशन की रिपोर्ट के माध्यम से भारत शासन अधिनियम 1935 के अधिक विस्तृत और संघात्मक ढांचे के विनिर्माण का विधिक वैधानिक मार्ग प्रशस्त किया।

wincompete

अध्याय 3: भारत शासन अधिनियम 1935: अखिल भारतीय संघ की परिकल्पना, प्रांतीय स्वायत्तता व विधिक गतिकी

1. अधिनियम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वैधानिक यात्रा

भारत शासन अधिनियम 1935 ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किया गया अब तक का सबसे विस्तृत, व्यापक और जटिल कानूनी दस्तावेज था। यह अधिनियम किसी एक आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं था, बल्कि वर्ष 1919 के अधिनियम की विफलता के बाद शुरू हुई एक लंबी संवैधानिक मंथन यात्रा का तार्किक अंत था। इसकी विधिक जड़ें साइमन कमीशन की रिपोर्ट (1930), लंदन में आयोजित तीन गोलमेज सम्मेलनों (1930-1932) में हुए संवैधानिक विमर्श, लॉर्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता वाली संयुक्त प्रवर समिति (Joint Select Committee) के प्रतिवेदन और मार्च 1933 में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रख्यापित 'श्वेत पत्र' (White Paper) में समाहित थीं। ब्रिटिश संसद ने व्यापक संशोधनों के बाद 2 अगस्त 1935 को इस पर शाही संस्तुति प्रदान की। इस मूल अधिनियम में कुल **321 धाराएं** (Sections) और **10 अनुसूचियां** (Schedules) शामिल थीं। भारत के वर्तमान संवैधानिक ढांचे का लगभग दो-तिहाई विधिक हिस्सा सीधे इसी अधिनियम के संरचनात्मक प्रारूप पर आधारित है।

2. अखिल भारतीय संघ (All India Federation) की परिकल्पना और ढांचा

1935 के अधिनियम के तहत भारतीय इतिहास में पहली बार ब्रिटिश प्रांतों और देशी रियासतों को मिलाकर एक 'अखिल भारतीय संघ' (All India Federation) स्थापित करने का वैधानिक कपाट खोला गया। इस प्रस्तावित संघ का विनिर्माण दो परस्पर भिन्न विधिक और प्रशासनिक प्रणालियों के बलात एकीकरण पर आधारित था।

2.1 संघ की अनिवार्य और स्वैच्छिक कड़ियाँ

- **ब्रिटिश प्रांतों की वैधानिक अनिवार्यता:** गवर्नर के अधीन आने वाले सभी 11 ब्रिटिश प्रांतों (यथा- मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त प्रांत, पंजाब, बिहार, मध्य प्रांत एवं बरार, असम, उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत, उड़ीसा और सिंध) तथा 6 मुख्य आयुक्त (Chief Commissioners) के प्रांतों के लिए इस प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ में सम्मिलित होना विधिक रूप से पूर्णतः अनिवार्य (Mandatory) था।
- **देशी रियासतों का स्वैच्छिक विन्यास:** देशी रियासतों (Princely States) के लिए संघ में शामिल होना पूरी तरह स्वैच्छिक (Voluntary) रखा गया था। यदि कोई रियासत संघ में सम्मिलित होना चाहती थी, तो उसके शासक को ब्रिटिश क्राउन के साथ एक विधिक दस्तावेज पर हस्ताक्षर करना पड़ता था, जिसे '**सहमति पत्र**' (Instrument of Accession) कहा जाता था। इस पत्र में वे विनिर्दिष्ट शर्तें और विधायी सीमाएं दर्ज होती थीं, जिनके तहत वह रियासत अपनी संप्रभुता का कुछ भाग संघ को सौंपने पर सहमत होती थी।

2.2 संघ के निर्माण की पूर्व विधिक शर्तें और विफलता

अधिनियम में अखिल भारतीय संघ को वास्तविक धरातल पर क्रियान्वित करने के लिए दो अत्यंत कठोर और अनिवार्य वैधानिक शर्तें (Provisos) लगाई गई थीं:

1. रियासतों के कुल विनिर्दिष्ट प्रतिनिधियों में से कम से कम आधी सीटों का प्रतिनिधित्व करने वाले शासक संघ में शामिल होने के लिए अपनी विधिक सहमति प्रदान करें।
2. संघ में सम्मिलित होने वाली रियासतों की कुल जनसांख्यिकी का आयतन, देशी भारत (Princely India) की समग्र सांख्यिकीय जनसंख्या के न्यूनतम **50 प्रतिशत** के बराबर होना अनिवार्य था।

चूंकि देशी रियासतों के राजा अपनी आंतरिक प्रशासनिक संप्रभुता को खोने और औपनिवेशिक नियंत्रण के लोकतांत्रिक हस्तांतरण से अत्यधिक आशंकित थे, इसलिए उन्होंने इस विधिक सहमति पत्र पर कभी हस्ताक्षर नहीं किए। परिणामतः, निर्धारित कानूनी शर्तें पूरी न होने के कारण **यह प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ कभी भी वास्तविक अस्तित्व में नहीं आ सका** और केंद्र का शासन पूर्ववर्ती नियमों के तहत ही संचालित होता रहा।

3. प्रांतीय स्वायत्तता (Provincial Autonomy) का विधिक सूत्रपात

भारत शासन अधिनियम 1935 की सबसे महत्वपूर्ण और व्यावहारिक विशेषता प्रांतीय स्तर पर 'प्रांतीय स्वायत्तता' (Provincial Autonomy) का विधिक सूत्रपात था। इस प्रावधान ने प्रांतों की प्रशासनिक गतिकी को पूरी तरह बदल दिया और इसका क्रियान्वयन 1 अप्रैल 1937 से विधिक रूप से प्रभावी हुआ।

3.1 प्रांतीय द्वैध शासन का अंत

इस अधिनियम द्वारा वर्ष 1919 के अधिनियम के तहत प्रांतों में लागू की गई दोषपूर्ण व अतार्किक 'द्वैध शासन प्रणाली' (Dyarchy) को विधिक रूप से पूरी तरह समाप्त कर दिया गया। प्रांतीय सूची के विषयों का 'आरक्षित' और 'हस्तांतरित' श्रेणियों में किया गया विभाजन कानूनन लुप्त कर दिया गया।

3.2 स्वतंत्र विधिक अस्तित्व और नियंत्रण मुक्ति

- प्रांतों को केंद्रीय सरकार के प्रशासनिक और विधायी नियंत्रण से व्यापक रूप से विमुक्त किया गया। अब प्रांतीय सरकारें गवर्नर-जनरल के अधीन काम करने वाले एजेंट मात्र नहीं थीं, बल्कि वे ब्रिटिश क्राउन से सीधे अपनी विधिक सत्ता प्राप्त करती थीं।
- प्रांतों को एक पृथक विधिक व्यक्तित्व (Legal Personality) प्रदान किया गया, जिससे वे अपने वित्तीय और विधायी कर्तव्यों का संप्रयोगिक संचालन करने हेतु संप्रभु हो गईं।

3.3 पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना

- प्रांतों का संपूर्ण कार्यपालिका प्रशासन अब पूरी तरह उन भारतीय मंत्रियों (Ministers) को सौंप दिया गया जो प्रांतीय विधानमंडल के निर्वाचित सदस्य थे और सदन के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी (Collectively Accountable) थे।
- प्रांतीय गवर्नर के लिए यह विधिक रूप से आवश्यक बनाया गया कि वह प्रांत का प्रशासन मंत्रियों की सलाह और सहायता (Aid and Advice) से ही संचालित करेगा।

4. प्रांतीय गवर्नर की असाधारण विधिक शक्तियां और विशेषाधिकार

यद्यपि प्रांतों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई थी, परंतु प्रांतीय गवर्नर को कुछ ऐसी निरंकुश और असाधारण विधिक शक्तियां (Overriding Powers) प्रदान की गई थीं, जिन्होंने 'प्रांतीय स्वायत्तता' के लोकतांत्रिक मूल सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से संकीर्ण बना दिया। गवर्नर की शक्तियों को तीन विधिक श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया था:

4.1 विवेकाधीन शक्तियां (Discretionary Powers)

इन शक्तियों का प्रयोग करते समय गवर्नर अपने मंत्रियों की सलाह लेने के लिए विधिक रूप से बाध्य नहीं था। वह पूरी तरह स्वतंत्र विलेख के आधार पर कार्य कर सकता था, जैसे—मंत्रियों की नियुक्ति और उन्हें पदच्युत करना, विधानमंडल का सत्रावसान करना या उसे भंग करना, तथा विधेयकों पर वीटो का प्रयोग करना।

4.2 व्यक्तिगत निर्णय के मामले (Individual Judgment)

इन मामलों में गवर्नर मंत्रियों से सलाह तो लेता था, परंतु उस सलाह को मानने या न मानने और अंतिम निर्णय लेने का उसका अपना स्वतंत्र विधिक अधिकार सुरक्षित था। इसके अंतर्गत प्रांत की शांति व्यवस्था बनाए रखना और अल्पसंख्यकों व सिविल सेवकों के विधिक अधिकारों की रक्षा करने की 'विशेष जिम्मेदारी' (Special Responsibility) शामिल थी।

4.3 प्रांतीय संवैधानिक तंत्र की विफलता (धारा 93)

- **धारा 93 का विनियामक विन्यास:** यदि गवर्नर को यह समाधान हो जाता था कि प्रांत का शासन अधिनियम के विधिक प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता, तो वह धारा 93 (Section 93) के तहत उद्घोषणा जारी करके प्रांतीय सरकार और मंत्रियों के समस्त विधिक अधिकार सीधे अपने हाथ में ले सकता था। यह आधुनिक भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) का प्राथमिक वैधानिक और आनुवंशिक पूर्वज था।

5. प्रांतीय विधानमंडलों का संरचनात्मक विन्यास

इस अधिनियम द्वारा प्रांतीय विधानमंडलों के आकार और शक्तियों में व्यापक सांख्यिकीय विस्तार किया गया। 11 ब्रिटिश प्रांतों में से 6 प्रांतों में द्विसदनीय व्यवस्थापिका (Bicameral Legislature) स्थापित की गई।

- **द्विसदनीय प्रांत:** बंगाल, बॉम्बे, मद्रास, संयुक्त प्रांत (UP), बिहार और असम। इन प्रांतों में दो सदन विन्यासित किए गए: विधान परिषद (उच्च सदन - स्थायी निकाय) और विधानसभा (निम्न सदन)।

- **एकसदनीय प्रांत:** पंजाब, मध्य प्रांत एवं बरार, उड़ीसा, सिंध और उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत में केवल एक सदन (विधानसभा) का विन्यास रखा गया।
- **सांप्रदायिक निर्वाचन का उग्र विस्तार:** मॉर्ले-मिंटो (1909) और मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड (1919) सुधारों की सांप्रदायिक विभाजन की औपनिवेशिक नीति को इस अधिनियम द्वारा अपने चरम स्तर पर पहुँचा दिया गया। अब पृथक निर्वाचन मंडल का वैधानिक कपाट **दलित जातियों (Scheduled Castes), महिलाओं और श्रम व औद्योगिक श्रमिकों** के लिए भी पृथक रूप से खोल दिया गया, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक ताने-बाने को गहराई से प्रभावित किया।

6. शक्तियों का त्रिविध आनुपातिक विभाजन और अवशिष्ट शक्तियां

1935 के अधिनियम ने केंद्र और प्रांतों के विधायी क्षेत्राधिकार को पूरी तरह सुस्पष्ट करने के लिए शक्तियों का एक अत्यंत परिपक्व और विस्तृत त्रिविध विभाजन किया, जो हमारे वर्तमान संविधान की **सातवीं अनुसूची** का मूल आनुवंशिक विन्यास है। इसके तहत तीन सूचियां निर्मित की गईं:

1. **संघ सूची (Federal List):** इसके अंतर्गत राष्ट्रीय महत्व के कुल **59 विषयों** को रखा गया, जिन पर कानून बनाने का अनन्य विधिक अधिकार केवल संघीय व्यवस्थापिका के पास था। मुख्य विषय: रक्षा, विदेशी मामले, मुद्रा, सिक्का निर्माण, नौसेना, वायुसेना, रेलवे और डाक-तार।
2. **प्रांतीय सूची (Provincial List):** इसके अंतर्गत प्रादेशिक महत्व के कुल **54 विषयों** को समाहित किया गया, जिन पर प्रांतीय विधानमंडल कानून बनाने हेतु पूर्णतः अधिकृत थे। मुख्य विषय: पुलिस, प्रांतीय लोक सेवाएं, न्याय प्रशासन, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सा और भूमि राजस्व।
3. **समवर्ती सूची (Concurrent List):** इसके अंतर्गत कुल **36 विषयों** को सम्मिलित किया गया, जिन पर केंद्र और प्रांत दोनों ही कानून बना सकते थे, परंतु टकराव की स्थिति में केंद्र का कानून विधिक रूप से प्रभावी माना जाता था। मुख्य विषय: दीवानी व फौजदारी कानून, विवाह, तलाक, श्रम कल्याण, कारखाने और समाचार पत्र।

अवशिष्ट शक्तियों (Residuary Powers) का विशिष्ट विन्यास

- **वायसराय का एकाधिकार:** इस अधिनियम की सबसे महत्वपूर्ण विधिक विशिष्टता यह थी कि अवशिष्ट शक्तियां (वे विषय जो तीनों सूचियों में शामिल नहीं थे) न तो संघीय व्यवस्थापिका को दी गईं और न ही प्रांतीय विधानमंडलों को, बल्कि वे विधिक रूप से गवर्नर-जनरल (वायसराय) के व्यक्तिगत विवेक के अधीन सुरक्षित रखी गईं। वायसराय यह विधिक निर्धारण करता था कि किसी अवशिष्ट विषय पर कानून बनाने का अधिकार संघ को दिया जाए या प्रांत को।

सारणी 3.1: शक्तियों का त्रिविध विधायी विभाजन

सूची का नाम	कुल विनिर्दिष्ट विषय	विधायी क्षेत्राधिकार	मुख्य विषयों के सांख्यिकीय उदाहरण
संघ सूची	59 विषय	संघीय व्यवस्थापिका	रक्षा, वैदेशिक मामले, मुद्रा, सिक्का, रेलवे, डाक
प्रांतीय सूची	54 विषय	प्रांतीय विधानमंडल	पुलिस, जेल, प्रादेशिक लोक सेवाएं, भू-राजस्व
समवर्ती सूची	36 विषय	केंद्र एवं प्रांत दोनों	दीवानी-फौजदारी प्रक्रिया, विवाह, श्रम कल्याण

अवशिष्ट शक्तियां	सूचियों से इतर	गवर्नर-जनरल का विवेक	आकस्मिक और नवीन उभरते विषय कड़ियाँ
------------------	----------------	----------------------	------------------------------------

7. मताधिकार का विस्तार और सांख्यिकीय संकेतक

भारत शासन अधिनियम 1919 के अत्यंत संकुचित मताधिकार (3%) के मापदंडों में इस अधिनियम द्वारा सांख्यिकीय विस्तार किया गया।

- **सांख्यिकीय वृद्धि:** यद्यपि संपत्ति, कर और शैक्षणिक योग्यताओं के कड़े विधिक मापदंड अभी भी बने रहे, परंतु मताधिकार का दायरा बढ़ाकर कुल जनसांख्यिकी का लगभग **10 प्रतिशत** कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश भारत के लगभग 3 करोड़ से अधिक नागरिकों को प्रांतीय चुनावों में मतदान करने का वैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ, जिसने वर्ष 1937 के प्रादेशिक चुनावों के राजनीतिक भूगोल को निर्मित किया।

8. अधिनियम की अंतर्निहित वैधानिक कमियां और विधिक सीमाएं

भारत शासन अधिनियम 1935 अपने विस्तृत ऊर्ध्वाधर ढांचे के बावजूद एक औपनिवेशिक दस्तावेज था, जो भारतीय जनसांख्यिकी की संप्रभुता के मूल सिद्धांतों के सर्वथा विपरीत था। इसकी प्रमुख विधिक कमियां निम्नलिखित थीं:

8.1 खोखली प्रांतीय स्वायत्तता और कड़ा केंद्रीय नियंत्रण

प्रांतों को स्वायत्तता तो दी गई, परंतु गवर्नर की विवेकाधीन शक्तियों, विशेष जिम्मेदारियों और धारा 93 के तहत मंत्रियों को बर्खास्त करने के अबाधित अधिकारों ने उत्तरदायी शासन को पूरी तरह पंगु बना दिया था। मंत्रियों के पास नीतियां बनाने का विधिक अधिकार था, परंतु उन्हें लागू करने के लिए आवश्यक वित्तीय और प्रशासनिक तंत्र पर अंतिम नियंत्रण गवर्नर का ही था। इसीलिए राजनीतिक विचारकों ने इसे 'गवर्नरराज' की संज्ञा दी थी।

8.2 संशोधन की शक्ति का अभाव

इस अधिनियम में किसी भी प्रकार का लघु या वृहद संशोधन करने, उसकी व्याख्या करने या उसमें बदलाव करने का विधिक अधिकार भारतीय व्यवस्थापिकाओं को नहीं दिया गया था। यह पूर्ण संप्रभुता केवल **ब्रिटिश संसद** के पास ही सुरक्षित थी, जो भारतीय आत्मनिर्णय के अधिकार पर विधिक चोट थी।

8.3 संघवाद का दोषपूर्ण और अव्यावहारिक ढांचा

प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ का ढांचा पूरी तरह विरोधाभासी था। एक ओर लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित प्रांत थे और दूसरी ओर राजाओं की निरंकुश सत्ता वाली रियासतें थीं। राजाओं को रियासतों की जनता को विधायी प्रतिनिधित्व देने की बजाय सीधे अपने प्रतिनिधि मनोनीत करने का विधिक अधिकार दिया गया था, जो लोकतांत्रिक चेतना के विरुद्ध था।

9. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **प्रांतीय स्वायत्तता:** प्रांतों को केंद्रीय नियंत्रण से विमुक्त कर एक स्वतंत्र विधिक व्यक्तित्व प्रदान करने तथा निर्वाचित मंत्रियों के माध्यम से पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने का वैधानिक प्रक्रम।
- **सहमति पत्र (Instrument of Accession):** देशी रियासतों के शासकों द्वारा हस्ताक्षरित वह विधिक दस्तावेज जिसके माध्यम से वे प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ में सम्मिलित होने की वैधानिक संस्तुति प्रदान करते थे।
- **धारा 93 (Section 93):** 1935 के अधिनियम की वह संवेदी कानूनी धारा जिसके तहत प्रांतीय गवर्नर संवैधानिक तंत्र के विफल होने पर प्रांत का संपूर्ण प्रशासन अपने हाथों में ले सकता था।
- **अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers):** वे नवीन या अवशिष्ट विषय जिनका उल्लेख संघ, प्रांतीय या समवर्ती सूची में नहीं था और जिन पर अंतिम निर्णय लेने का वैधानिक विशेषाधिकार वायसराय के पास सुरक्षित था।
- **विशेष जिम्मेदारी (Special Responsibility):** गवर्नर की वे विनिर्दिष्ट विधिक कड़ियाँ जिनके तहत वह मंत्रियों की सलाह को खारिज कर अल्पसंख्यकों और ब्रिटिश व्यापारिक हितों की रक्षा हेतु अपने 'व्यक्तिगत निर्णय' का प्रयोग करता था।

- **मेटासोमैटिक विधायी संकरण:** दो परस्पर विपरीत राजनीतिक प्रणालियों (ब्रिटिश प्रांत व निरंकुश रियासतों) को जबरन एक वैधानिक संघ के भीतर जोड़ने की दोषपूर्ण औपनिवेशिक कला।

10. ऐतिहासिक राजनीतिक प्रतिक्रियाएं

इस अधिनियम के विधिक प्रावधानों पर समकालीन भारतीय नेतृत्व की राजनीतिक और दार्शनिक प्रतिक्रियाएं अत्यधिक तीक्ष्ण थीं, जो इसके अंतर्निहित औपनिवेशिक चरित्र को पूरी तरह स्पष्ट करती हैं:

- **पंडित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य:** उन्होंने इस अधिनियम के दोषपूर्ण और नियंत्रित विधायी ढांचे की आलोचना करते हुए इसे **"अनेक ब्रेकों वाली परंतु इंजन-रहित मशीन"** (A machine with all brakes and no engine) की आंचलिक संज्ञा दी थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने इसे दासता का नया चार्टर (Charter of Slavery) भी कहा था।
- **मोहम्मद अली जिन्ना का वक्तव्य:** उन्होंने इस अधिनियम के प्रस्तावित अखिल भारतीय संघीय ढांचे और प्रांतीय स्वायत्तता के विन्यास को **"पूर्णतः सड़ा हुआ, मूल रूप से खराब और पूरी तरह अस्वीकार्य"** घोषित किया था।

यह अधिनियम भारत के संवैधानिक विकास का एक ऐसा संवेदी मील का पत्थर था जिसने शक्तियों के आनुपातिक विभाजन और विधायी सूचियों के माध्यम से भविष्य के स्वतंत्र भारत के संघीय ढांचे का खाका तैयार किया, भले ही इसका अपना मूल विन्यास औपनिवेशिक और दमनकारी नियंत्रणों से पूरी तरह ग्रसित रहा हो। सांसद थे। साइमन कमीशन की रिपोर्ट और उसके बाद आयोजित गोलमेज सम्मेलनों के विधिक मंथन ने ही आगे चलकर भारत शासन अधिनियम 1935 के विनियामक ढांचे को जन्म दिया।

अध्याय 4: भारत शासन अधिनियम 1935: केंद्र में द्वैध शासन, शक्तियों का त्रिविध आनुपातिक विभाजन और अवशिष्ट शक्तियां

1. केंद्र में द्वैध शासन (Dyarchy at the Centre) का विनियामक विन्यास

भारत शासन अधिनियम 1935 द्वारा ब्रिटिश भारत के प्रशासनिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण संरचनात्मक विस्थापन किया गया। इस अधिनियम के तहत प्रांतों से द्वैध शासन को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया, परंतु उसे **केंद्रीय स्तर पर विधिक रूप से प्रस्थापित किया गया**। केंद्र में द्वैध शासन की स्थापना का मूल दार्शनिक आधार रक्षा और विदेश नीति जैसे रणनीतिक विषयों पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों की रक्षा करना तथा गैर-रणनीतिक प्रशासनिक कड़ियों को आंशिक लोक नियंत्रण में सौंपना था।

इस विनियामक विन्यास के अंतर्गत संघीय सूची (Federal List) के समस्त प्रशासनिक और विधायी विषयों को दो सुस्पष्ट विधिक उप-वर्गों में विभाजित किया गया: **'आरक्षित विषय' (Reserved Subjects)** और **'हस्तांतरित विषय' (Transferred Subjects)**।

1.1 आरक्षित विषय (Reserved Subjects) और प्रशासनिक ढांचा

आरक्षित विषयों के अंतर्गत ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व और सामरिक संप्रभुता से जुड़े सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभागों को विन्यासित किया गया था। इन विषयों की सूची इस प्रकार थी:

- **रक्षा (Defence):** सेना, नौसेना, वायुसेना और सैन्य अवसंरचना का संपूर्ण नियंत्रण।
- **वैदेशिक मामले (External Affairs):** विदेशी राज्यों, अंतरराष्ट्रीय संधियों और राष्ट्रमंडल देशों के साथ संबंध।
- **धार्मिक मामले (Ecclesiastical Affairs):** ब्रिटिश भारत में राजकीय चर्च और धार्मिक विन्यास।
- **जनजातीय क्षेत्र (Tribal Areas):** सीमांत और संवेदी जनजातीय अंचलों का प्रशासनिक नियमन।

प्रशासनिक प्राधिकारी: इन आरक्षित विषयों का संपूर्ण विधिक प्रशासन गवर्नर-जनरल (वायसराय) अपने द्वारा मनोनीत अधिकतम **तीन परामर्शदाताओं (Councillors)** की सहायता से स्वयं करता था। ये परामर्शदाता संघीय व्यवस्थापिका (Federal Legislature) के प्रति विधिक रूप से पूरी तरह गैर-जवाबदेह (Unaccountable) थे। व्यवस्थापिका अविश्वास प्रस्ताव लाकर भी इन्हें पदच्युत नहीं कर सकती थी।

1.2 हस्तांतरित विषय (Transferred Subjects) और मंत्रियों का दायित्व

संघीय सूची के शेष समस्त सामाजिक, आर्थिक और वाणिज्यिक विषयों को 'हस्तांतरित वर्ग' के अंतर्गत विन्यासित किया गया। इसके मुख्य उदाहरण निम्नलिखित थे:

- डाक-तार, रेलवे, सीमा शुल्क, आयकर, वाणिज्य-उद्योग, नागरिक उड्डयन, अंतःप्रांत संचार, सिक्का निर्माण और मुद्रा।

प्रशासनिक प्राधिकारी: इन हस्तांतरित विषयों का प्रशासन गवर्नर-जनरल उन **मंत्रियों (Ministers)** की सलाह और सहायता से करता था जिनकी अधिकतम संख्या **10** विनिर्दिष्ट की गई थी। ये मंत्री संघीय व्यवस्थापिका के निर्वाचित सदस्य होते थे और सदन के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी (Collectively Accountable) होते थे। विधायी असहयोग की स्थिति में इनका विस्थापन अनिवार्य था।

2. शक्तियों का त्रिविध आनुपातिक विभाजन और विधायी सूचियाँ

1935 के अधिनियम ने केंद्र और प्रांतों के विधायी क्षेत्राधिकार को पूरी तरह सुस्पष्ट करने तथा संभावित प्रशासनिक गतिरोधों के शमन हेतु शक्तियों का एक अत्यंत परिपक्व और विस्तृत त्रिविध विभाजन किया। यह भारत में 'विधायी संघवाद' (Legislative Federalism) की वास्तविक प्रशासनिक आधारशिला थी, जिसका वर्गीकरण निम्नलिखित विनिर्देशों पर आधारित था:

2.1 संघ सूची (Federal List)

यह सूची पूर्णतः राष्ट्रीय महत्व और केंद्रीय कमान के विषयों हेतु विनिर्दिष्ट थी। इस पर कानून बनाने का अनन्य विधिक अधिकार (Exclusive Power) केवल संघीय व्यवस्थापिका के पास सुरक्षित था।

- **कुल विषय संख्या: 59 विषय।**
- **मुख्य विषय वर्ग:** रक्षा, विदेशी मामले, नौसेना, वायुसेना, रेलवे, डाक-तार, मुद्रा, सिक्का निर्माण, केंद्रीय लोक सेवाएं, सीमा शुल्क, बाह्य व्यापार और आयकर।

2.2 प्रांतीय सूची (Provincial List)

यह सूची प्रादेशिक स्वायत्तता और स्थानीय आवश्यकताओं के सर्वथा अनुकूल विन्यासित थी। इस पर कानून बनाने का पूर्ण विधायी अधिकार केवल प्रांतीय विधानमंडलों को प्राप्त था।

- **कुल विषय संख्या: 54 विषय।**
- **मुख्य विषय वर्ग:** पुलिस, प्रांतीय लोक सेवाएं, न्याय प्रशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सा, स्वच्छता, जेल, स्थानीय स्वशासन, शिक्षा, कृषि, जल संसाधन, सिंचाई, वन और भूमि राजस्व।

2.3 समवर्ती सूची (Concurrent List)

यह सूची अंतर-प्रादेशिक विधायी समरूपता और साझा हितों के विषयों को प्रदर्शित करती थी। इस पर संघीय व्यवस्थापिका और प्रांतीय विधानमंडल दोनों ही कानून बनाने हेतु विधिक रूप से अधिकृत थे।

- **कुल विषय संख्या: 36 विषय।**
- **मुख्य विषय वर्ग:** दीवानी व फौजदारी कार्यविधि, विवाह, तलाक, दत्तक ग्रहण, संपत्ति का हस्तांतरण, श्रम कल्याण, कारखाने, ट्रेड यूनियन, बिजली, पुनर्वास और समाचार पत्र।

विधायी विरोधाभास और केंद्र की सर्वोच्चता का नियम:

यदि समवर्ती सूची के किसी विषय पर संघीय व्यवस्थापिका द्वारा विनिर्मित कानून और प्रांतीय विधानमंडल द्वारा पारित कानून के मध्य कोई विधिक गतिरोध या विरोधाभास उत्पन्न होता था, तो **संघीय कानून को प्रांतीय कानून के ऊपर विधिक रूप से सर्वोच्च और प्रभावी माना जाता था।** प्रांतीय कानून उस सीमा तक स्वतः ही शून्य (Void) हो जाता था जिस सीमा तक वह संघीय अधिनियम का उल्लंघन करता था।

3. अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers) और वायसराय का विशेषाधिकार

भारत शासन अधिनियम 1935 का सबसे विशिष्ट, जटिल और रणनीतिक विधिक विन्यास 'अवशिष्ट शक्तियों' से संबद्ध था। अवशिष्ट शक्तियों से तात्पर्य उन सभी आकस्मिक, नवीन या भविष्य में उभरने वाले विधायी विषयों से था जिनका स्पष्ट उल्लेख संघ सूची, प्रांतीय सूची या समवर्ती सूची के अंतर्गत सांख्यिकीय रूप से नहीं किया गया था।

वायसराय की अभेद्य वैधानिक स्थिति:

- **संसद और प्रांतों का अपवर्जन:** आधुनिक लोकतांत्रिक संविधानों (जहाँ अवशिष्ट शक्तियां सीधे संसद या राज्यों को हस्तांतरित होती हैं) के सर्वथा विपरीत, 1935 के अधिनियम के तहत अवशिष्ट शक्तियां न तो संघीय व्यवस्थापिका को सौंपी गईं और न ही प्रांतीय विधानमंडलों को विधिक रूप से देय थीं।

- निर्णय का अनन्य विलेख: अधिनियम की धारा 104 के विधिक प्रावधानों के तहत अवशिष्ट शक्तियों को पूरी तरह गवर्नर-जनरल (वायसराय) के व्यक्तिगत विवेक (Discretion) के अधीन आरक्षित किया गया था। * विनियामक क्रियान्वयन उपागम: वायसराय यह विधिक निर्धारण करने हेतु पूरी तरह स्वतंत्र और प्राधिकृत था कि किसी विशिष्ट अवशिष्ट विषय पर कानून बनाने का अधिकार संघ की व्यवस्थापिका को सौंपा जाए अथवा प्रांतीय विधानमंडल को। वह विशिष्ट परिस्थितियों में अपनी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करके किसी भी विषय पर अध्यादेश के माध्यम से सीधे विनियामक आदेश जारी कर सकता था। यह व्यवस्था ब्रिटिश औपनिवेशिक नियंत्रण की केंद्रीकृत सर्वोच्चता को अभेद्य बनाए रखने का अंतिम विधिक सुरक्षा कवच थी।

4. समेकित तुलनात्मक तालिका: शक्तियों का त्रिविध विधायी विभाजन

विधायी सूची का प्रामाणिक नाम	कुल विनिर्दिष्ट विषय	प्राथमिक विधिक प्राधिकारी	मुख्य विषयों के प्रामाणिक उदाहरण	विधायी विरोधाभास की स्थिति में विनियामक नियम
संघ सूची (Federal List)	59 विषय	संघीय व्यवस्थापिका	रक्षा, वैदेशिक मामले, रेलवे, डाक-तार, मुद्रा, सीमा शुल्क	इस सूची के विषयों पर प्रांतीय विधानमंडलों का हस्तक्षेप कानूनन पूर्णतः वर्जित था।
प्रांतीय सूची (Provincial List)	54 विषय	प्रांतीय विधानमंडल	पुलिस, जेल, प्रादेशिक लोक सेवाएं, भू-राजस्व, स्वास्थ्य	सामान्य परिस्थितियों में प्रांतीय स्वायत्तता के तहत पूर्णतः स्वतंत्र विधायी क्षेत्राधिकार।
समवर्ती सूची (Concurrent List)	36 विषय	केंद्र एवं प्रांत दोनों	दीवानी-फौजदारी प्रक्रिया, विवाह, श्रम कल्याण, कारखाने	टकराव की स्थिति में संघीय कानून प्रांतीय कानून के ऊपर विधिक रूप से सर्वोच्च था।
अवशिष्ट शक्तियां (Residuary)	सूचियों से इतर	गवर्नर-जनरल (वायसराय)	आकस्मिक और अनउल्लिखित नवीन विषय कड़ियाँ	वायसराय यह तय करता था कि कानून निर्माण का अधिकार किसे दिया जाए।

5. शक्तियों के विभाजन का प्रादेशिक, प्रशासनिक और वित्तीय प्रभाव प्रतिरूप

इस अधिनियम द्वारा किए गए विधायी सूचियों के आनुपातिक विभाजन और बजटीय संसाधनों के आवंटन ने ब्रिटिश भारत के आर्थिक और प्रशासनिक भूगोल को गहरे स्तर पर प्रभावित किया, जिसका विवरण निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा सुस्पष्ट है:

5.1 वित्तीय संसाधनों का आनुपातिक असंतुलन

- संघ सूची के अंतर्गत अत्यधिक उच्च और लोचदार राजस्व देने वाले स्रोतों (जैसे सीमा शुल्क, निगम कर और विनिर्माण कर) को पूरी तरह केंद्र के लिए आरक्षित रखा गया।
- इसके विपरीत, प्रांतीय सूची के अंतर्गत उन विषयों (जैसे पुलिस, सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा) को रखा गया जिन पर भारी मात्रा में शासकीय व्यय (Expenditure) होना अनिवार्य था, जबकि प्रांतों के राजस्व के स्रोत (मुख्यतः भू-राजस्व व सिंचाई शुल्क) अत्यंत अनिश्चित और मानसून की विफलता के प्रति संवेदी थे। इस बजटीय विसंगति के कारण प्रांत वित्तीय रूप से सदैव केंद्रीय अनुदानों पर आश्रित बने रहे, जिससे वास्तविक 'प्रांतीय स्वायत्तता' का दार्शनिक आधार व्यावहारिक रूप से पंगु हो गया।

5.2 प्रशासनिक कड़ियों का विकेंद्रीकरण

- प्रांतीय लोक सेवाओं (Provincial Civil Services) को पूर्णतः प्रांतीय सूची (विषय 4) के अंतर्गत रखे जाने से प्रांतों को अपने प्रशासनिक अधिकारियों की भर्ती, उनके सेवा नियमों के निर्धारण और अनुशासनात्मक विनियामक नियंत्रण का वैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ। इसने प्रांतीय स्तर पर कार्यपालिका के स्थानीयकरण को तीव्र किया।

6. गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार और 'विशेष जिम्मेदारी' (Special Responsibilities) का वैधानिक ढांचा

केंद्र में द्वैध शासन लागू होने और हस्तांतरित विषयों को मंत्रियों को सौंपे जाने के बावजूद, गवर्नर-जनरल की निरंकुश प्रशासनिक संप्रभुता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अधिनियम में 'विशेष जिम्मेदारियों' का एक जटिल सुरक्षा चक्र विन्यासित किया गया था।

विवेकाधीन और व्यक्तिगत निर्णय के मामले:

गवर्नर-जनरल को हस्तांतरित विषयों के संबंध में भी मंत्रियों की लोकतांत्रिक सलाह को खारिज करने और अपने 'व्यक्तिगत निर्णय' (Individual Judgment) का प्रयोग करने का अबाधित विधिक अधिकार था। अधिनियम की धारा 12 के तहत गवर्नर-जनरल को निम्नलिखित 7 प्रमुख 'विशेष जिम्मेदारियां' सौंपी गई थीं:

1. ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा और आंतरिक शांति के प्रति उत्पन्न होने वाले किसी भी गंभीर खतरे का निवारण करना।
2. संघीय सरकार की वित्तीय स्थिरता (Financial Stability) और ब्रिटिश भारत के विधिक ऋण संभरण की साख को अक्षुण्ण बनाए रखना।
3. अल्पसंख्यकों (Minorities) के विधिक अधिकारों, धार्मिक भावनाओं और उनके आनुपातिक हितों की रक्षा करना।
4. सार्वजनिक सेवाओं (Civil Services) के गोरे अधिकारियों के वैधानिक अधिकारों और विशेषाधिकारों का पूर्ण संरक्षण सुनिश्चित करना।
5. ब्रिटेन से आयात होने वाले माल पर किसी भी प्रकार के दंडात्मक या भेदभावपूर्ण सीमा शुल्क को विधिक रूप से रोकना (ब्रिटिश वाणिज्यिक हितों की सर्वोच्च रक्षा)।
6. देशी रियासतों के शासकों के विधिक अधिकारों, संप्रभु गरिमा और उनके आंतरिक विशेषाधिकारों की पूर्ण रक्षा करना।
7. अपनी इन सभी विशेष जिम्मेदारियों के निर्वहन हेतु किसी भी मंत्री के विधायी निर्णय को वीटो करने की अबाधित विधिक शक्ति का प्रयोग करना।

7. अधिनियम की अंतर्निहित वैधानिक कमियां और विधिक सीमाएं

भारत शासन अधिनियम 1935 का यह केंद्रीय प्रशासनिक और विधायी ढांचा कई ऐसी अंतर्निहित विसंगतियों और विरोधाभासों से ग्रसित था, जिसके कारण यह भारतीय जनसांख्यिकी को वास्तविक लोकतांत्रिक स्वशासन देने में पूरी तरह असमर्थ रहा:

7.1 केंद्र में गैर-जिम्मेदार कार्यपालिका का बने रहना

- हस्तांतरित विषयों पर मंत्रियों का नियंत्रण केवल नाममात्र का था। गवर्नर-जनरल अपनी 'विशेष जिम्मेदारियों' और 'व्यक्तिगत निर्णय' के कूटों द्वारा मंत्रियों के प्रत्येक नीतिगत निर्णय को पलटने हेतु विधिक रूप से सक्षम था।
- रक्षा और विदेश जैसे महत्वपूर्ण विभागों पर केंद्रीय व्यवस्थापिका का कोई बजटीय या विनियामक नियंत्रण नहीं था, जिससे कार्यपालिका का चरित्र पूरी तरह अनुत्तरदायी (Unresponsive) बना रहा।

7.2 अवशिष्ट शक्तियों का निरंकुश विन्यास

- अवशिष्ट शक्तियों का नियंत्रण वायसराय के विवेक को सौंपे जाने से विधायी संप्रभुता का हास हुआ। संसद किसी भी नए उभरते विषय पर तब तक कानून नहीं बना सकती थी जब तक वायसराय अपनी विधिक संस्तुति जारी न कर दे। यह लोकतांत्रिक संघवाद के मूल सिद्धांतों पर एक वैधानिक चोट थी।

7.3 वित्तीय पंगुता का विरोधाभास

- संघीय बजट का लगभग 80% हिस्सा पूरी तरह 'गैर-मतदान योग्य' (Non-Voteable) श्रेणी के अंतर्गत संचित निधि पर भारित रखा गया था। व्यवस्थापिका के निर्वाचित लोक प्रतिनिधि बजट के इस विशाल हिस्से पर न तो कोई कटौती प्रस्ताव ला सकते थे और न ही मतदान कर सकते थे, जिससे बजटीय नियंत्रण का लोकतांत्रिक ढांचा पूरी तरह खोखला सिद्ध हुआ।

8. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- केंद्र में द्वैध शासन (Dyarchy at the Centre):** संघीय विधायी क्षेत्राधिकार के विषयों को 'आरक्षित' (Reserved) और 'हस्तांतरित' (Transferred) वर्गों में विभाजित कर समांतर प्रशासनिक प्रणालियों द्वारा शासन करने का वैधानिक प्रतिरूप।
- अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers):** वे विधायी विषय जिनका स्पष्ट वर्गीकरण संघ, प्रांतीय या समवर्ती सूचियों के अंतर्गत सांख्यिकीय रूप से अनुपस्थित होता है और जिन पर निर्णय का विशेषाधिकार वायसराय के अधीन होता है।
- विशेष जिम्मेदारी (Special Responsibility):** वायसराय की वे वैधानिक कड़ियाँ जिनके तहत वह ब्रिटिश वाणिज्यिक हितों और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा हेतु मंत्रियों की सलाह को पलटने के लिए विधिक रूप से प्राधिकृत था।
- गैर-मतदान योग्य बजट (Non-Voteable Budget):** वार्षिक वित्तीय विवरण का वह बहुआयामी हिस्सा (लगभग 80%) जो विधायी मतदान की प्रक्रिया से पूरी तरह मुक्त और सीधे गवर्नर-जनरल के वीटो नियंत्रण में सुरक्षित रहता था।
- व्यक्तिगत निर्णय (Individual Judgment):** वायसराय का वह विधिक क्षेत्राधिकार जिसके तहत वह मंत्रियों से केवल औपचारिक सलाह लेता था, परंतु अंतिम विनियामक निर्णय अपनी मर्जी से करने हेतु कानूनन स्वतंत्र था।

9. वर्ष 1919 और वर्ष 1935 के अधिनियमों का समेकित सांख्यिकीय एवं तुलनात्मक विन्यास

सारणी 4.2: द्वैध शासन और शक्तियों के विभाजन का ऐतिहासिक विस्थापन

विनियामक और विधायी आयाम	भारत शासन अधिनियम 1919	भारत शासन अधिनियम 1935
द्वैध शासन (Dyarchy) का स्तर	केवल प्रांतीय स्तर पर क्रियान्वित (आरक्षित व हस्तांतरित विषयों का आनुपातिक विभाजन)	प्रांतों से पूरी तरह समाप्त; केंद्रीय स्तर पर विधिक रूप से प्रस्थापित।
विधायी सूचियों का विन्यास	केवल केंद्रीय और प्रांतीय विषयों का दो स्तरीय सामान्य वर्गीकरण था।	त्रिविध विभाजन: संघ सूची (59), प्रांतीय सूची (54) तथा समवर्ती सूची (36)।

अवशिष्ट शक्तियों (Residuary) का कूट	प्रांतों को सौंपने की सामान्य प्रशासनिक प्रवृत्ति थी।	पूरी तरह गवर्नर-जनरल (वायसराय) के व्यक्तिगत विवेक के अधीन आरक्षित (धारा 104)।
समवर्ती विधायी विरोधाभास	समवर्ती सूची जैसी कोई परिपक्व और सुस्पष्ट वैधानिक व्यवस्था अस्तित्व में नहीं थी।	विरोधाभास की स्थिति में केंद्रीय/संघीय कानून प्रांतीय कानून के ऊपर विधिक रूप से प्रभावी।
मंत्रियों का उत्तरदायित्व भार	हस्तांतरित प्रांतीय विषयों पर भारतीय मंत्री विधान परिषद के प्रति जवाबदेह थे।	संघीय हस्तांतरित विषयों (जैसे रेलवे, संचार) पर मंत्री संघीय विधायिका के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी।
बजटीय मतदान का प्रतिशत भार	लगभग 65% केंद्रीय बजट गैर-मतदान योग्य श्रेणी में भारत था।	लगभग 80% संघीय बजट पूरी तरह विधायी मतदान से विधिक रूप से वर्जित और सुरक्षित।

10. विनियामक ढांचे का दीर्घकालिक संवैधानिक प्रभाव प्रतिरूप

भारत शासन अधिनियम 1935 द्वारा प्रख्यापित शक्तियों का यह त्रिविध आनुपातिक विभाजन और समवर्ती सूची में केंद्र की सर्वोच्चता का नियम स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माताओं के लिए एक प्राथमिक रक्षात्मक ब्लूप्रिंट सिद्ध हुआ:

- **सातवीं अनुसूची का आनुवंशिक कूट:** हमारे वर्तमान संविधान की सातवीं अनुसूची के अंतर्गत आने वाली तीन सूचियों (संघ, राज्य और समवर्ती सूची) का ढांचागत विन्यास सीधे 1935 के इसी अधिनियम के विषयों के वर्गीकरण पर आधारित है। स्वतंत्र भारत में केवल अवशिष्ट शक्तियों का विन्यास बदलकर वायसराय के स्थान पर **संसद** (अनुच्छेद 248) को सौंप दिया गया, ताकि एक सुदृढ़ और अखंड राष्ट्र का निर्माण किया जा सके।
- **संवैधानिक निरंतरता और विधिक गतिकी:** भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 की धारा 8 के तहत यह विधिक प्रावधान किया गया था कि 26 जनवरी 1950 को नया संविधान पूरी तरह लागू होने तक देश का संपूर्ण प्रशासनिक और विधायी संचालन विधिक रूप से इसी 1935 के अधिनियम के नियमों और शक्तियों के विभाजन प्रतिरूप के अनुसार ही गतिक बना रहेगा। इसने सत्ता के शांतिपूर्ण और अबाधित हस्तांतरण को एक सुदृढ़ वैधानिक स्थायित्व प्रदान किया।

भारत शासन अधिनियम 1935 का त्रिविध विधायी विभाजन, केंद्र में द्वैध शासन का जटिल प्रयोग और वायसराय के अधीन आरक्षित अवशिष्ट शक्तियों का वैधानिक विन्यास ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों को लोकतांत्रिक आवरण में लपेटने की एक उत्कृष्ट औपनिवेशिक कला थी। इसके अंतर्निहित नियंत्रणों और 80% गैर-मतदान योग्य बजट के भार ने भले ही समकालीन भारतीय नेतृत्व को असंतुष्ट किया हो, परंतु इसके प्रशासनिक और विधायी सूचियों के विभाजन के वैज्ञानिक सिद्धांतों ने आधुनिक भारतीय प्रशासनिक भूगोल और वित्तीय संघवाद के ऊर्ध्वाधर ढांचे को एक अभेद्य विधिक विन्यास प्रदान किया।

अध्याय 5: भारत शासन अधिनियम 1935: संघीय न्यायालय, रिज़र्व बैंक की स्थापना व आधुनिक संवैधानिक कड़ियाँ

1. संघीय न्यायालय (Federal Court) का विनिर्मित ढांचा एवं क्षेत्राधिकार

भारत शासन अधिनियम 1935 द्वारा भारत के न्यायिक इतिहास में एक ऐतिहासिक और युगांतरकारी विस्थापन किया गया। इस अधिनियम की धारा 200 के तहत भारत में पहली बार एक **संघीय न्यायालय (Federal Court of India)** की स्थापना का वैधानिक मार्ग प्रशस्त किया गया। इस न्यायालय ने **1 अक्टूबर 1937** से दिल्ली में अपना आधिकारिक कार्य विधिक रूप से प्रारंभ किया।

1.1 संरचनात्मक बनावट और न्यायाधीशों का विन्यास

- **सांख्यिकीय संरचना:** अधिनियम के विनिर्देशों के अनुसार, संघीय न्यायालय में **एक मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice)** तथा अधिकतम **छह अन्य न्यायाधीशों** का विन्यास निर्धारित किया गया था।
- **प्रथम विधिक नियुक्तियाँ:** सर मॉरिस ग्वायर (Sir Maurice Gwyer) को इस संघीय न्यायालय का प्रथम विख्यात मुख्य न्यायाधीश होने का वैधानिक गौरव प्राप्त हुआ। उनके साथ दो भारतीय न्यायाधीशों—सर शाह मुहम्मद सुलेमान और मुकुंद रामराव जयकर (एम. आर. जयकर) को भी प्रारंभिक संस्तर में विधिक रूप से नियुक्त किया गया था।
- **योग्यता और सेवा शर्तें:** न्यायाधीशों की नियुक्ति सीधे ब्रिटिश क्राउन द्वारा की जाती थी। योग्यता के लिए किसी उच्च न्यायालय में न्यूनतम 5 वर्ष का वकालत/न्यायिक अनुभव अथवा ब्रिटेन/स्कॉटलैंड में बैरिस्टर होना अनिवार्य था। इनके लिए विधिक सेवानिवृत्ति की आयु **65 वर्ष** निर्धारित की गई थी।

1.2 त्रिविध क्षेत्राधिकार प्रतिरूप

संघीय न्यायालय को अखिल भारतीय स्तर पर विधायी और प्रशासनिक गतिरोधों के शमन हेतु तीन विशिष्ट श्रेणियों के अंतर्गत व्यापक क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) प्रदान किया गया था:

1. **प्राथमिक या मूल क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction):** इसके तहत संघीय सरकार (केंद्र), ब्रिटिश प्रांतों और देशी रियासतों के मध्य उत्पन्न होने वाले किसी भी विधिक या विधायी व्याख्या से संबद्ध विवादों की प्रत्यक्ष सुनवाई का अनन्य अधिकार केवल इसी न्यायालय के पास सुरक्षित था।
2. **अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction):** यदि किसी उच्च न्यायालय (High Court) ने यह विधिक रूप से प्रमाणित कर दिया हो कि उस वाद में भारत शासन अधिनियम 1935 या किसी अन्य शाही विलेख की व्याख्या से संबंधित कानून का कोई सारवान प्रश्न (Substantial Question of Law) अंतर्निहित है, तो उसके विरुद्ध अपील सीधे संघीय न्यायालय में की जा सकती थी।
3. **परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction):** गवर्नर-जनरल (वायसराय) किसी भी सार्वजनिक महत्व के विधिक या तथ्यपरक प्रश्न पर संघीय न्यायालय से आधिकारिक रूप से विधिक राय/परामर्श मांग सकता था, परंतु इस राय को मानने के लिए कार्यपालिका वैधानिक रूप से बाध्य नहीं थी।

1.3 प्रिवी काउंसिल की विधिक सर्वोच्चता

संघीय न्यायालय अपने नाम के अनुरूप भारत का सर्वोच्च या अंतिम अपीलीय न्यायालय नहीं था। इसके द्वारा दिए गए विधिक निर्णयों के विरुद्ध लंदन में स्थित 'प्रिवी काउंसिल' (Privy Council) में अपील विधिक रूप से की जा सकती थी। प्रिवी काउंसिल ही तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य की अंतिम और संप्रभु न्यायिक कड़ी थी।

2. भारतीय रिज़र्व बैंक (Reserve Bank of India) की वैधानिक स्थापना

भारत शासन अधिनियम 1935 की धारा 152 और वित्तीय संघवाद के मूल आर्थिक सिद्धांतों के अनुपालन में देश की मौद्रिक स्थिरता, साख नियंत्रण और मुद्रा संभरण को विनियमित करने के लिए एक केंद्रीय बैंक की स्थापना को नीतिगत प्राथमिकता दी गई। यद्यपि इसका वैधानिक खाका 'हिल्टन यंग आयोग' (Hilton Young Commission - 1926) की सिफारिशों और 'भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम 1934' द्वारा तैयार किया गया था, परंतु इसका वास्तविक प्रशासनिक एकीकरण 1935 के अधिनियम के तहत प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ की वित्तीय आवश्यकताओं को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से **1 अप्रैल 1935** को किया गया।

2.1 वित्तीय और विनियामक उत्तरदायित्व

- **मुद्रा और साख का नियमन:** रिज़र्व बैंक को बैंक नोट जारी करने का अनन्य विधिक एकाधिकार प्रदान किया गया, जिससे संपूर्ण ब्रिटिश भारत में मौद्रिक समरूपता स्थापित हुई।
- **शासकीय बैंकर का दायित्व:** यह संघीय सरकार और प्रांतीय सरकारों के समस्त लोक ऋणों (Public Debts), जमा राशियों और अंतर-प्रादेशिक वित्तीय लेन-देन का विनियामक नियंत्रक बना।
- **प्रारंभिक सांख्यिकीय पूंजी विन्यास:** रिज़र्व बैंक की स्थापना **5 करोड़ रुपये** की अधिकृत पूंजी के साथ की गई थी, जो मुख्य रूप से निजी शोयरधारकों के स्वामित्व में विभाजित थी। **सर ओसबोर्न स्मिथ (Sir Osborne Smith)** को रिज़र्व बैंक का प्रथम गवर्नर विधिक रूप से नियुक्त किया गया था।

3. संघीय रेलवे प्राधिकरण (Federal Railway Authority) का विन्यास

इस अधिनियम द्वारा भारतीय रेलवे के प्रशासनिक भूगोल और वाणिज्यिक प्रबंधन को पूरी तरह राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करने के लिए एक अत्यंत विशिष्ट और स्वायत्त संस्थागत ढांचा तैयार किया गया, जिसे '**संघीय रेलवे प्राधिकरण**' (Federal Railway Authority) कहा गया।

- **वैधानिक बनावट:** इस प्राधिकरण में कुल **7 सदस्यों** का विन्यास किया गया था, जिनकी नियुक्ति सीधे गवर्नर-जनरल द्वारा अपने व्यक्तिगत विवेक के आधार पर की जाती थी ताकि विधायी मंत्री इन पर अपना नियंत्रण न रख सकें।
- **वित्तीय स्वायत्तता:** रेलवे के बजट और उसकी आजीविका गतिकी को पूरी तरह केंद्रीय कार्यपालिका के सीधे संरक्षण में रखा गया था, जिसने औपनिवेशिक काल में सैन्य संचलन और ब्रिटिश व्यापारिक माल के तीव्र परिवहन को एक अभेद्य विधिक सुरक्षा कवच प्रदान किया।

4. बर्मा, अदन और सिन्ध-उड़ीसा का भौगोलिक एवं प्रशासनिक सीमांकन

भारत शासन अधिनियम 1935 ने समकालीन दक्षिण एशिया के प्रशासनिक भूगोल और क्षेत्रीय सीमाओं को पूरी तरह विस्थापित कर दिया। इसके तहत निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण प्रादेशिक और विधिक परिवर्तन किए गए:

4.1 बर्मा का पूर्ण विस्थापन

- **बर्मा (म्यांमार) का पृथक्करण:** वर्ष 1886 से ब्रिटिश भारत का प्रशासनिक हिस्सा रहे **बर्मा को इस अधिनियम के विधिक प्रावधानों के तहत 1 अप्रैल 1937 को भारत से पूरी तरह विधिक रूप से पृथक कर दिया गया।** इसके लिए एक पृथक 'बर्मा सरकार अधिनियम 1935' लागू किया गया और उसकी विधायी कड़ियाँ लंदन में सीधे भारत सचिव के अधीन कर दी गईं।

4.2 अदन का विनियामक विस्थापन

- **अदन का उपनिवेशीकरण:** अरब सागर के रणनीतिक कगार पर स्थित 'अदन' (Aden) को, जो अब तक बम्बई प्रेसिडेंसी के विधिक प्रशासनिक नियंत्रण में था, भारत से अलग करके सीधे ब्रिटिश क्राउन के अधीन एक 'चीफ कमिश्नर' का औपनिवेशिक प्रांत बना दिया गया।

4.3 नवीन प्रादेशिक प्रांतों का विनिर्माण

भाषाई और भू-आकृतिक विषमताओं के आधार पर भारत के भीतरी नक्शे में दो सर्वथा नवीन प्रांतों का विधिक गठन **1 अप्रैल 1936** को किया गया:

- **सिंध प्रांत:** इसे बम्बई प्रेसिडेंसी के भौगोलिक क्षेत्राधिकार को काटकर एक पृथक मुस्लिम बहुल प्रांत का विधिक दर्जा दिया गया।
- **उड़ीसा प्रांत:** इसे पूर्ववर्ती बिहार और उड़ीसा प्रांत के संकर संस्तरों से अलग करके एक स्वतंत्र भाषाई प्रादेशिक इकाई के रूप में स्थापित किया गया।

5. समेकित तुलनात्मक तालिका: 1935 के अधिनियम की नवीन विनियामक संस्थाएँ

विनियामक संस्था / प्रादेशिक परिवर्तन का नाम	वैधानिक क्रियान्वयन तिथि कूट	प्राथमिक नोडल / प्रशासनिक प्राधिकारी	मुख्य विनिर्दिष्ट विधिक / वित्तीय कार्य	आधुनिक व्यवस्था में तात्कालिक उत्तराधिकारी	भारतीय

संघीय न्यायालय (Federal Court)	1 अक्टूबर 1937	सर मॉरिस ग्वायर (प्रथम मुख्य न्यायाधीश)	प्रांतीय-केंद्रीय विधायी विवादों की मूल व अपीलीय सुनवाई	भारत का सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) - अनुच्छेद 124
भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI)	1 अप्रैल 1935	सर ओसबोर्न स्मिथ (प्रथम बैंक गवर्नर)	मुद्रा जारी करना, साख नियंत्रण, शासकीय बैंकिंग कड़ियाँ	भारतीय रिज़र्व बैंक (केंद्रीय बैंक) - राष्ट्रीयकृत 1949
संघीय रेलवे प्राधिकरण	अधिनियम विनिर्देश	गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत 7 सदस्य	रेलवे अवसंरचना का राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त संचालन	रेलवे बोर्ड (रेल मंत्रालय) - बजटीय एकीकरण प्रतिरूप
बर्मा का प्रादेशिक पृथक्करण	1 अप्रैल 1937	ब्रिटिश औपनिवेशिक औपनिवेशिक विंग	दक्षिण-पूर्व एशिया के प्रशासनिक भूगोल का पुनर्निर्धारण	स्वतंत्र म्यांमार राष्ट्र की भौगोलिक सीमाएँ
सिंध व उड़ीसा प्रांत गठन	1 अप्रैल 1936	संबंधित प्रादेशिक प्रांतीय गवर्नर	भाषाई व आनुपातिक जनसांख्यिकी को पृथक विधायी कपाट देना	आधुनिक उड़ीसा (ओडिशा) राज्य व सिंध संभाग

6. आधुनिक भारतीय संविधान के साथ कड़ियाँ (Modern Constitutional Links)

भारत शासन अधिनियम 1935 केवल एक ऐतिहासिक औपनिवेशिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह हमारे वर्तमान **भारतीय संविधान (26 जनवरी 1950)** का सबसे विशाल और सघन विधिक विन्यास का ब्लूप्रिंट है। हमारे संविधान के कुल 395 अनुच्छेदों में से लगभग **250 अनुच्छेद** सीधे तौर पर 1935 के इसी अधिनियम के शब्दों, धाराओं और ढांचागत प्रारूपों से या तो हूबहू लिए गए हैं या उनमें आंशिक जलवायवीय सुधार करके विस्थापित किए गए हैं। इसकी प्रमुख आधुनिक संवैधानिक कड़ियाँ निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा सुस्पष्ट हैं:

6.1 संघीय न्यायालय से सर्वोच्च न्यायालय की विकास यात्रा (अनुच्छेद 124)

- स्वतंत्र भारत के संविधान के **अनुच्छेद 124** के तहत स्थापित 'भारत का सर्वोच्च न्यायालय' (Supreme Court of India) सीधे 1935 के इसी संघीय न्यायालय का विधिक और संस्थागत उत्तराधिकारी है।
- विधिक संप्रभुता का पूर्ण उदय:** 28 जनवरी 1950 को जब सर्वोच्च न्यायालय का विधिक उद्घाटन हुआ, तो उसने 1935 के संघीय न्यायालय के मूल, अपीलीय और परामर्शदात्री क्षेत्राधिकारों (अनुच्छेद 131, 132, 143) को पूरी तरह अंगीकार कर लिया। इसके साथ ही, लंदन की **प्रिवी काउंसिल की विधिक सर्वोच्चता को पूरी तरह निरस्त कर दिया गया**, जिससे भारतीय न्यायपालिका को पूर्ण संप्रभु और अंतिम अपीलीय न्यायालय का विधिक दर्जा प्राप्त हुआ।

6.2 आपातकालीन उपबंधों का आनुवंशिक कूट (अनुच्छेद 356 व धारा 93)

- हमारे वर्तमान संविधान के भाग XVIII में प्रयुक्त होने वाले आपातकालीन प्रावधानों का मूल प्रशासनिक विन्यास 1935 के अधिनियम की धाराओं में समाहित था। प्रांतीय स्तर पर संवैधानिक तंत्र विफल होने पर गवर्नर द्वारा मंत्रियों को बर्खास्त करने की **धारा 93 का सीधा सुव्यवस्थित रूपांतरण आधुनिक संविधान के अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन)** के रूप में किया गया है। औपनिवेशिक काल का यह

दमनकारी प्रशासनिक अस्त आज भी राज्यों की स्वायत्तता के नियमन में एक रणनीतिक विधिक माध्यम है।

6.3 लोक सेवा आयोगों का त्रि-स्तरीय संस्थागत विन्यास (अनुच्छेद 315)

- 1935 के अधिनियम की धारा 242 के तहत प्रांतों और केंद्र के लिए पृथक-पृथक भर्ती बोर्डों के विन्यास को विस्तृत किया गया था। इसी वैधानिक ढांचे को हमारे आधुनिक संविधान के भाग XIV के **अनुच्छेद 315** के अंतर्गत पूरी तरह अंगीकार किया गया, जिसके तहत संघ के लिए 'संघ लोक सेवा आयोग' (UPSC) तथा प्रत्येक राज्य के लिए '**राज्य लोक सेवा आयोग**' (जैसे राजस्थान लोक सेवा आयोग) के त्रि-स्तरीय प्रशासनिक ढांचे को संवैधानिक स्थायित्व प्रदान किया गया।

6.4 राज्यपाल (Governor) के पद की दोहरी प्रशासनिक भूमिका

- हमारे संविधान के अनुच्छेद 153 व 154 के तहत स्थापित राज्यों के राज्यपाल का पद सीधे 1935 के अधिनियम के प्रांतीय गवर्नरों के विधिक प्रारूप पर आधारित है। राज्यपाल की '**विवेकाधीन शक्तियां**' (**अनुच्छेद 163**) और विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखने का वैधानिक विशेषाधिकार (अनुच्छेद 200) सीधे 1935 की औपनिवेशिक धारा 75 और धारा 76 की आनुवंशिक कॉपीयाँ हैं, जो केंद्र के मजबूत विनियामक नियंत्रण को पुष्ट करती हैं।

7. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- सारवान प्रश्न (Substantial Question of Law):** कानून या संविधान की धाराओं की वह व्याख्या जिस पर किसी वाद का विधिक निर्णय पूरी तरह आश्रित होता है और जिसका निवारण उच्च न्यायिक संस्तर द्वारा अनिवार्य होता है।
- परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction):** न्यायालय की वह विनिर्दिष्ट विधिक कड़ि जिसके तहत वह कार्यपालिका के प्रधान द्वारा मांगे जाने पर किसी जटिल विधिक विषय पर अपनी आधिकारिक वैधानिक राय प्रकट करता है।
- प्रिवी काउंसिल (Privy Council):** लंदन में स्थित ब्रिटिश साम्राज्य की वह सर्वोच्च और अंतिम न्यायिक पीठ जो औपनिवेशिक न्यायालयों (जैसे भारत के संघीय न्यायालय) के निर्णयों के विरुद्ध विधिक अपील सुनती थी।
- शासकीय बैंकर (Fiscal Agent):** केंद्रीय बैंक का वह वैधानिक उत्तरदायित्व जिसके तहत वह सरकार के लोक ऋणों, राजकोषीय जमाओं और बजटीय तरलता का नियमन एवं संभरण करता है।
- धारा 93 (Section 93):** 1935 के अधिनियम का वह संवेदी विनियामक अस्त जो प्रांतीय स्वायत्तता को निलंबित कर संपूर्ण विधायी कमान सीधे गवर्नर को सौंपने का वैधानिक आधार था।
- मेटासोमैटिक न्यायिक विस्थापन:** औपनिवेशिक अपीलीय प्रणाली (प्रिवी काउंसिल) का पूर्ण अंत कर शत-प्रतिशत संप्रभु राष्ट्रीय सर्वोच्च न्यायालय के विनिर्माण का भू-वैधानिक प्रक्रम।

8. 1935 के अधिनियम के न्यायिक व संस्थागत ढांचे का समेकित तुलनात्मक विन्यास

सारणी 5.2: 1935 का अधिनियम बनाम आधुनिक भारतीय संविधान

विनियामक और विधायी आयाम	भारत शासन अधिनियम 1935 का विन्यास	आधुनिक भारतीय संविधान (1950) की स्थिति
अंतिम न्यायिक संप्रभुता	संघीय न्यायालय सर्वोच्च नहीं था; अंतिम विधिक कड़ि लंदन की प्रिवी काउंसिल थी।	भारत का सर्वोच्च न्यायालय पूर्णतः संप्रभु व अंतिम अपीलीय न्यायालय है।
अवशिष्ट शक्तियों का क्षेत्राधिकार	गवर्नर-जनरल (वायसराय) के व्यक्तिगत विवेक और वीटो के अधीन आरक्षित थीं (धारा 104)।	पूर्णतः लोकतांत्रिक रूप से भारत की संसद (Parliament - अनुच्छेद 248) को हस्तांतरित।

प्रांतीय आपातकाल	संवैधानिक	धारा 93 के तहत गवर्नर मंत्रियों को बर्खास्त कर संपूर्ण विधायी कमान स्वयं ले सकता था।	अनुच्छेद 356 के तहत राज्यपाल के प्रतिवेदन पर राष्ट्रपति शासन लगाने की विधिक व्यवस्था।
केंद्रीय बैंकिंग और साख नियमन		रिज़र्व बैंक (RBI) 5 करोड़ की पूँजी के साथ मुख्य रूप से निजी शेयरधारकों के स्वामित्व में था।	रिज़र्व बैंक का पूर्ण राष्ट्रीयकरण (1949) कर उसे शत-प्रतिशत सार्वजनिक उपक्रम बनाया गया।
संशोधन संप्रभुता	की वैधानिक	अधिनियम में किसी भी प्रकार के परिवर्तन का विधिक अधिकार केवल ब्रिटिश संसद के पास सुरक्षित था।	संसद को अनुच्छेद 368 के तहत संविधान में संशोधन करने की पूर्ण, परंतु सीमित (मूल ढांचा) शक्ति प्राप्त है।

9. संस्थागत परिवर्तनों के प्रशासनिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव प्रतिरूप

इस अधिनियम द्वारा स्थापित की गई विशिष्ट संस्थाओं और प्रादेशिक विस्थापनों ने तत्कालीन भारत के आर्थिक और राजनीतिक भूगोल को पूरी तरह बदल दिया:

- **बर्मा के पृथक्करण का आर्थिक हास:** बर्मा के भारत से अलग हो जाने के कारण ब्रिटिश भारत के खनिज भूगोल को भारी सांख्यिकीय क्षति पहुँची, क्योंकि बर्मा के समृद्ध **खनिज तेल (petroleum) ब्लॉक, टिन, जस्ता और प्रचुर सागवान (Teak) के वनों** का विशाल राजस्व कपाट भारत से विधिक रूप से हमेशा के लिए बंद हो गया। इसके अतिरिक्त, चावल के व्यापारिक संभरण नेटवर्क में व्यवधान आने से सीमांत क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा संवेदी हो गई।
- **न्यायिक संघवाद का उदय:** संघीय न्यायालय की स्थापना ने भारत के विभिन्न प्रांतों के उच्च न्यायालयों के ऊपर एक समरूप अपीलीय विन्यास निर्मित किया। इसने भारत के वकीलों और न्यायाधीशों को संवैधानिक कानून (Constitutional Law) की बारीकियों को समझने और विधायी शक्तियों के त्रिविध विभाजन के विधिक गतिरोधों को सुलझाने का एक उत्कृष्ट राष्ट्रीय मंच प्रदान किया, जिसने भविष्य की स्वतंत्र भारतीय न्यायपालिका के चरित्र को निर्मित किया।
- **मौद्रिक संप्रभुता का एकीकरण:** रिज़र्व बैंक के कार्यशील होने से विभिन्न रियासतों की स्थानीय मुद्राओं और विनियम दरों के उतार-चढ़ाव का प्रभाव कम हुआ। ब्रिटिश भारत में एक ही विनियामक मौद्रिक नीति (Monetary Policy) और बैंक दर (Bank Rate) लागू होने से वाणिज्यिक ऋण प्रणालियों का आधुनिकीकरण हुआ, जिसने भीलवाड़ा और अहमदाबाद जैसे उभरते औद्योगिक वस्त्र नगरियों को वित्तीय स्थायित्व प्रदान किया।

भारत शासन अधिनियम 1935 का न्यायिक विन्यास, रिज़र्व बैंक की स्थापना का आर्थिक मूलाधार और बर्मा व सिंध जैसे प्रादेशिक विस्थापनों की विधिक गतिकी औपनिवेशिक नियंत्रण को एक सुव्यवस्थित और आधुनिक संस्थागत आवरण देने का राजनीतिक प्रक्रम था। इसके प्रिवी काउंसिल के अधीन रहने वाले संघीय न्यायालय और निजी स्वामित्व वाले रिज़र्व बैंक के भार ने भले ही पूर्ण स्वतंत्रता की आकांक्षाओं को सीमित किया हो, परंतु इसके द्वारा विनिर्मित प्रशासनिक कड़ियों, लोक सेवा आयोगों के ढांचे और शक्तियों के विभाजन के वैज्ञानिक सिद्धांतों ने आधुनिक भारतीय संविधान के ऊर्जाधर ऊँचे ढांचे को एक अभेद्य और टिकाऊ विधिक वैधानिक आधारशिला प्रदान की।

अध्याय 6: वर्ष 1919 और 1935 के अधिनियमों का तुलनात्मक सांख्यिकीय और प्रशासनिक विश्लेषण

1. दार्शनिक विन्यास और वैधानिक प्रस्तावना का तुलनात्मक प्रतिरूप

भारत के संवैधानिक इतिहास में भारत शासन अधिनियम 1919 और भारत शासन अधिनियम 1935 दो सर्वप्रमुख विवर्तनिक मोड़ हैं, जिन्होंने ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों और भारतीय स्वशासन की आकांक्षाओं के मध्य विधायी संतुलन निर्धारित किया। इन दोनों विलेखों के दार्शनिक और वैधानिक विन्यास का अंतर इनके प्रशासनिक नियंत्रण की गहराई को प्रकट करता है।

- **वर्ष 1919 के अधिनियम की प्रस्तावना:** इस अधिनियम की अपनी एक सुस्पष्ट और पृथक वैधानिक प्रस्तावना (Preamble) थी। इस प्रस्तावना में ब्रिटिश संसद ने पहली बार आधिकारिक रूप से यह विधिक संकल्प घोषित किया था कि भारत में 'क्रमिक उत्तरदायी शासन' (Progressive Realization of Responsible Government) की स्थापना करना ब्रिटिश राज का घोषित लक्ष्य है, यद्यपि भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का एक अभिन्न अंग बनाए रखने की शर्त भी इसमें विन्यासित थी।
- **वर्ष 1935 के अधिनियम की प्रस्तावना का लोप:** भारत शासन अधिनियम 1935 की अपनी कोई पृथक या नवीन प्रस्तावना नहीं थी। ब्रिटिश संसद में अनुदारवादी तत्वों के दबाव के कारण इसमें डोमिनियन स्टेटस या पूर्ण उत्तरदायी शासन जैसी किसी नई दार्शनिक शब्दावली को वैधानिक रूप से जोड़ने से परहेज किया गया। इसके स्थान पर, भारतीय नेताओं के तकनीकी विरोध के शमन हेतु, वर्ष 1919 के अधिनियम की पुरानी प्रस्तावना को ही इस अधिनियम के साथ विधिक रूप से संबद्ध बनाए रखा गया ताकि पूर्व घोषित औपनिवेशिक वादे वैधानिक रूप से जीवित रहें।

2. अखिल भारतीय संघ बनाम एकात्मक विधायी संरक्षण

शक्तियों के प्रादेशिक वितरण और संप्रभुता के विन्यास के दृष्टिकोण से दोनों अधिनियम दो परस्पर विपरीत प्रशासनिक प्रतिरूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं:

- **1919 का अधिनियम - एकात्मक ढांचा:** यह अधिनियम मूल रूप से एक एकात्मक (Unitary) शासन प्रणाली का ही विन्यास था। यद्यपि प्रशासनिक सुगमता के लिए केंद्रीय और प्रांतीय सूचियों का स्पष्ट विभाजन किया गया था, परंतु प्रांतों को कोई स्वतंत्र विधिक अस्तित्व प्राप्त नहीं था। प्रांतीय गवर्नर और उनकी परिषदें पूरी तरह गवर्नर-जनरल (वायसराय) के प्रशासनिक एजेंट के रूप में कार्य करने हेतु वैधानिक रूप से विवश थीं। केंद्रीय व्यवस्थापिका किसी भी प्रांतीय विषय पर कानून बनाने की पूर्ण संप्रभुता वहन करती थी।
- **1935 का अधिनियम - संघवाद का सूत्रपात:** इस अधिनियम द्वारा पहली बार एक 'अखिल भारतीय संघ' (All India Federation) की परिकल्पना की गई। इस प्रस्तावित संघ के तहत 11 ब्रिटिश प्रांतों का सम्मिलित होना अनिवार्य (Mandatory) था, जबकि देशी रियासतों (Princely States) के लिए यह विन्यास पूरी तरह स्वैच्छिक (Voluntary) रखा गया था। इसके लिए राजाओं को 'सहमति पत्र' (Instrument of Accession) पर विधिक रूप से हस्ताक्षर करने थे। यद्यपि निर्धारित शर्तें पूरी न होने के कारण यह संघ कभी वास्तविक अस्तित्व में नहीं आ सका, परंतु इसने भारत में विधायी संघवाद के ऊर्ध्वाधर ढांचे को विधिक रूप से प्रस्थापित कर दिया।

3. प्रांतीय कार्यपालिका तिकी: स्वायत्तता बनाम द्वैध शासन प्रक्रम

प्रांतों का प्रशासनिक और विधायी नियंत्रण दोनों अधिनियमों के मध्य सबसे तीक्ष्ण विरोधाभास और विचलन का क्षेत्र रहा है, जिसका वर्गीकरण निम्नलिखित विनिर्देशों द्वारा सुस्पष्ट है:

3.1 1919 के अधिनियम के तहत प्रांतीय द्वैध शासन (Dyarchy)

इस अधिनियम द्वारा प्रांतों में 'द्वैध शासन प्रणाली' लागू की गई, जिसने प्रांतीय सूची के विषयों को दो अतार्किक और स्वतंत्र विधिक उप-वर्गों में विभाजित कर दिया:

- **आरक्षित विषय (Reserved Subjects):** इसके अंतर्गत प्रांत के सबसे महत्वपूर्ण विभाग (यथा- वित्त, भूमि राजस्व, पुलिस, न्याय, सिंचाई) रखे गए। इनका प्रशासन गवर्नर अपनी 'कार्यकारी परिषद' के माध्यम से करता था, जो प्रांतीय विधान परिषद के प्रति विधिक रूप से पूरी तरह गैर-जवाबदेह थी।

- **हस्तांतरित विषय (Transferred Subjects):** इसके अंतर्गत कम बजटीय भार वाले सामाजिक विभाग (यथा- शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन, कृषि) शामिल थे। इनका प्रशासन गवर्नर निर्वाचित भारतीय मंत्रियों की सलाह से करता था, जो व्यवस्थापिका के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी थे।

3.2 1935 के अधिनियम के तहत प्रांतीय स्वायत्तता (Provincial Autonomy)

- **द्वैध शासन का अंत:** इस अधिनियम द्वारा 1 अप्रैल 1937 से प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली और विषयों के आरक्षित-हस्तांतरित विभाजन को विधिक रूप से पूरी तरह समाप्त कर दिया गया।
- **पूर्ण उत्तरदायी सरकार:** प्रांतों को एक स्वतंत्र विधिक व्यक्तित्व प्रदान किया गया और संपूर्ण प्रांतीय सूची का प्रशासन निर्वाचित मंत्रियों को हस्तांतरित कर दिया गया। गवर्नर के लिए मंत्रियों की सलाह से कार्य करना एक विधिक औपचारिकता बनाया गया, यद्यपि धारा 93 के तहत संवैधानिक तंत्र की विफलता पर मंत्रियों को बर्खास्त करने और शासन अपने हाथ में लेने का असाधारण विशेषाधिकार गवर्नर के पास अभी भी सुरक्षित था।

4. शक्तियों का विधायी विभाजन और अवशिष्ट शक्तियों का वैधानिक कूट

केंद्र और प्रांतों के मध्य विधायी शक्तियों के सीमांकन का सांख्यिकीय और गुणात्मक प्रतिरूप दोनों अधिनियमों में क्रमिक विकास की अवस्था को प्रदर्शित करता है:

- **1919 का अधिनियम - द्वि-स्तरीय वर्गीकरण:** इसके तहत शक्तियों का केवल दो सूचियों (केंद्रीय सूची और प्रांतीय सूची) में विभाजन किया गया था। विषयों में ओवरलैपिंग या विधायी गतिरोध की स्थिति में केंद्रीय व्यवस्थापिका की संप्रभुता सर्वोपरि थी। समवर्ती सूची जैसी कोई सुस्पष्ट कानूनी व्यवस्था इस विलेख में अनुपस्थित थी।
- **1935 का अधिनियम - परिपक्व त्रिविध विभाजन:** इस अधिनियम ने आधुनिक भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची के आनुवंशिक कूट को निर्मित करते हुए शक्तियों का एक विस्तृत त्रिविध विभाजन किया:
 1. **संघ सूची:** इसके अंतर्गत राष्ट्रीय महत्व के कुल **59 विषय** विनिर्दिष्ट किए गए।
 2. **प्रांतीय सूची:** इसके अंतर्गत प्रादेशिक स्वायत्तता के कुल **54 विषय** समाहित किए गए।
 3. **समवर्ती सूची:** इसके अंतर्गत दोनों व्यवस्थापिकाओं के साझा हितों के कुल **36 विषय** सम्मिलित किए गए।

अवशिष्ट शक्तियों (Residuary Powers) का तुलनात्मक विन्यास:

- **1919 के अधिनियम में:** अवशिष्ट विषयों को प्रांतों को सौंपने की सामान्य प्रशासनिक प्रवृत्ति पाई जाती थी, बशर्ते गवर्नर-जनरल का वीटो सक्रिय न हो।
- **1935 के अधिनियम में:** अधिनियम की धारा 104 के तहत अवशिष्ट शक्तियों पर पूर्ण एकाधिकार सीधे गवर्नर-जनरल (वायसराय) के व्यक्तिगत विवेक के अधीन आरक्षित कर दिया गया। वायसराय यह विधिक निर्धारण करता था कि किसी अनउल्लिखित नवीन विषय पर कानून बनाने का अधिकार संघ की व्यवस्थापिका को दिया जाए अथवा प्रांतीय विधानमंडल को।

5. केंद्रीय विधायिका का संरचनात्मक एवं सांख्यिकीय विन्यास

दोनों अधिनियमों ने केंद्रीय स्तर पर विधायी सदनों के आकार, उनकी सदस्य संख्या और आनुपातिक बनावट में व्यापक परिवर्तन किए, जिसका विवरण निम्नलिखित सांख्यिकीय तालिकाओं द्वारा सुस्पष्ट है:

5.1 1919 के अधिनियम के तहत द्विसदनीय केंद्रीय विधायिका

इस अधिनियम ने पूर्ववर्ती एकसदनीय परिषद को विस्थापित कर पहली बार केंद्र में दो सदनों का विन्यास किया:

- **राज्य परिषद (उच्च सदन):** कुल सदस्य संख्या **60** (34 निर्वाचित, 26 मनोनीत)। कार्यकाल- 5 वर्ष। महिलाओं हेतु सदस्यता वर्जित।
- **केंद्रीय विधानसभा (निम्न सदन):** कुल सदस्य संख्या **145** (104 निर्वाचित, 41 मनोनीत)। कार्यकाल- 3 वर्ष।

5.2 1935 के अधिनियम के तहत प्रस्तावित संघीय विधायिका

इस अधिनियम द्वारा संघीय व्यवस्थापिका के आकार में अत्यधिक भारी सांख्यिकीय वृद्धि की गई, यद्यपि संघ के अस्तित्व में न आने के कारण यह विन्यास कभी प्रभावी नहीं हो सका:

- **राज्य परिषद (Council of State):** कुल सदस्य संख्या बढ़ाकर **260** निश्चित की गई। इसमें से 156 ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि तथा 104 देशी रियासतों के शासकों द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि होने थे। यह एक स्थायी सदन था जिसके एक-तिहाई सदस्य प्रति तीन वर्ष में सेवानिवृत्त होने थे।
- **संघीय विधानसभा (Federal Assembly):** कुल सदस्य संख्या बढ़ाकर **375** विनिर्दिष्ट की गई। इसमें ब्रिटिश भारत के प्रांतों हेतु 250 सीटें तथा देशी रियासतों के राजाओं के नामांकन हेतु 125 सीटें आनुपातिक रूप से आरक्षित की गई थीं। इसका कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित था।

6. समेकित तुलनात्मक सांख्यिकीय तालिका: सदनों की संरचनात्मक बनावट

सारणी 6.1: वर्ष 1919 और 1935 के विधायी सदनों का सांख्यिकीय तुलनात्मक चार्ट

विधायी सदन का विनिर्दिष्ट नाम	भारत शासन अधिनियम 1919 का विन्यास	भारत शासन अधिनियम 1935 का प्रस्तावित विन्यास	सामान्य विधिक कार्यकाल	रियासतों के मनोनीत प्रतिनिधियों का अनुपात
केंद्रीय उच्च सदन (राज्य परिषद)	60 सदस्य (34 निर्वाचित + 26 मनोनीत)	260 सदस्य (156 ब्रिटिश भारत + 104 रियासतें)	1919: 5 वर्ष 1935: स्थायी सदन (1/3 द्विवार्षिक)	1919: शून्य/1935: 40 प्रतिशत (104 सीटें राजाओं के अधीन)
केंद्रीय निम्न सदन (विधानसभा)	145 सदस्य (104 निर्वाचित + 41 मनोनीत)	375 सदस्य (250 ब्रिटिश भारत + 125 रियासतें)	1919: 3 वर्ष 1935: 5 वर्ष	1919: शून्य /1935: 33.3 प्रतिशत (125 सीटें सीधे राजाओं द्वारा देय)

7. सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली और मताधिकार के मापदंडों का विस्तार

ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति के तहत भारतीय राष्ट्रीय चेतना और साझा राजनीतिक मंचों को विखंडित करने की विधा दोनों अधिनियमों में उत्तरोत्तर उग्र होती गई:

- **1919 का अधिनियम - सांप्रदायिक विस्तार का द्वितीय चरण:** वर्ष 1909 के अधिनियम द्वारा केवल मुसलमानों को दिए गए पृथक निर्वाचन मंडल (Separate Electorate) के वैधानिक कपाट को खोलकर अब इसमें चार नए सामाजिक वर्गों को शामिल कर दिया गया: **सिख, भारतीय ईसाई, आंग्ल-भारतीय (Anglo-Indians) तथा यूरोपीय नागरिक**। इसके तहत मताधिकार संपत्ति और कर अदायगी पर आधारित संकीर्ण था, जिससे कुल जनसांख्यिकी का मात्र **3 प्रतिशत** हिस्सा ही मतदाता बन सका।
- **1935 का अधिनियम - चरम सांप्रदायिक विखंडन चक्र:** इस अधिनियम द्वारा पृथक निर्वाचन मंडल की संकीर्ण विधा को समाज के अंतिम छोरों तक पहुँचा दिया गया। अब इसके अंतर्गत **दलित जातियों (अधिसूचित जातियों), महिलाओं तथा श्रम व औद्योगिक श्रमिकों** के लिए पृथक चुनावी मेखलाएं विधिक रूप से आरक्षित कर दी गईं। मताधिकार के मापदंडों में आंशिक ढील दिए जाने से मतदाता जनसांख्यिकी का सांख्यिकीय आयतन बढ़कर कुल जनसंख्या का लगभग **10 प्रतिशत** (लगभग 3 करोड़ नागरिक) हो गया।

8. बजटीय विभाजन और वित्तीय संप्रभुता का तुलनात्मक विन्यास

वित्तीय संघवाद और बजटीय नियंत्रण के मापदंडों में दोनों विलेख भारत के आर्थिक भूगोल को व्यापक रूप से प्रभावित करते हैं:

- **1919 का अधिनियम - प्रांतीय बजट का पृथक्करण:** इस अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण वित्तीय विन्यास यह था कि इसने पहली बार **केंद्रीय बजट को प्रांतीय बजट से पूर्णतः विधिक रूप से पृथक कर दिया**। प्रांतों को अपने कर लगाने और बजट पारित करने की विधायी शक्ति दी गई। इसके साथ

ही, केंद्र के राजकोषीय घाटे को पूरा करने के लिए 'मेस्टन योजना' के तहत प्रांतों पर 'प्रांतीय अंशदान' (Provincial Contribution) का भारी बजटीय भार थोपा गया। केंद्रीय बजट का लगभग 65% हिस्सा गैर-मतदान योग्य (Non-Voteable) श्रेणी में आरक्षित था।

- **1935 का अधिनियम - वित्तीय निर्भरता का नया मॉडल:** इस अधिनियम ने प्रांतीय बजटों की स्वायत्तता को तो बनाए रखा और मेस्टन योजना के दमनकारी प्रांतीय अंशदान को विधिक रूप से समाप्त कर दिया, परंतु प्रांतों को वित्तीय रूप से केंद्र द्वारा दिए जाने वाले 'राजस्व अनुदान' (Grants-in-aid) पर अत्यधिक आश्रित बना दिया। आयकर का एक निश्चित आनुपातिक हिस्सा प्रांतों के मध्य वितरित करने की प्रणाली (ओटो नीमेयर रिपोर्ट) प्रारंभ की गई। इस अधिनियम के तहत केंद्रीय/संघीय बजट का लगभग 80% हिस्सा पूरी तरह विधायी मतदान से वर्जित और गवर्नर-जनरल के वीटो नियंत्रण में संचित निधि पर भारित रखा गया था।

9. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **प्रांतीय स्वायत्तता (Provincial Autonomy):** प्रांतों को केंद्रीय कार्यपालिका के प्रशासनिक हस्तक्षेप से विमुक्त कर सीधे ब्रिटिश क्राउन के अधीन एक पृथक विधिक व्यक्तित्व और पूर्ण उत्तरदायी सरकार प्रदान करने का वैधानिक प्रक्रम।
- **द्वैध शासन (Dyarchy):** एक ही प्रशासनिक प्रादेशिक इकाई के भीतर विषयों का आरक्षित और हस्तांतरित सूचियों में विभाजन कर दो समांतर शासक कड़ियों (कार्यकारी परिषद व निर्वाचित मंत्री) द्वारा शासन संचालित करने का दोषपूर्ण मॉडल।
- **अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers):** वे नवीन विधायी विषय जिनका स्पष्ट उल्लेख संघ, प्रांतीय या समवर्ती सूचियों के सांख्यिकीय विन्यास में नहीं होता और जिन पर अंतिम विनियामक निर्णय का विशेषाधिकार वायसराय के पास होता है।
- **गैर-मतदान योग्य बजट (Non-Voteable Budget):** सरकारी वार्षिक वित्तीय विवरण का वह बहुआयामी हिस्सा जो विधायी संवीक्षा और कटौती प्रस्तावों से पूरी तरह मुक्त और संचित निधि पर सीधे भारित माना जाता है।
- **सहमति पत्र (Instrument of Accession):** देशी रियासतों के शासकों द्वारा हस्ताक्षरित वह विधिक दस्तावेज जिसके माध्यम से वे प्रस्तावित अखिल भारतीय संघ में अपनी आंतरिक संप्रभुता का आंशिक हस्तांतरण करने पर वैधानिक रूप से सहमत होते थे।

10. समेकित तुलनात्मक प्रशासनिक संवीक्षा सारणी

सारणी 6.2: वर्ष 1919 और वर्ष 1935 के अधिनियमों का समेकित प्रशासनिक एवं विनियामक विश्लेषण

विनियामक प्रशासनिक आयाम	भारत शासन अधिनियम 1919 का विन्यास	भारत शासन अधिनियम 1935 का विन्यास	भारतीय संवैधानिक भूगोल पर दीर्घकालिक प्रभाव
प्रशासनिक ढांचा (Structure)	पूर्णतः एकात्मक नियंत्रण; प्रांत केवल केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य करने हेतु विधिक रूप से बाध्य थे।	सैद्धांतिक रूप से संघात्मक; प्रांतों को पृथक विधिक अस्तित्व व स्वायत्तता प्राप्त थी।	आधुनिक भारतीय संविधान के भाग XI के केंद्र-राज्य संबंधों का विनिर्माण ढांचा।
केंद्र में उत्तरदायित्व	कार्यपालिका पूरी तरह अनुत्तरदायी थी; गवर्नर-जनरल की परिषद व्यवस्थापिका से स्वतंत्र थी।	केंद्र में द्वैध शासन का प्रयोग; हस्तांतरित विषयों पर मंत्री विधायी सदनों के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी थे।	संसदीय उत्तरदायित्व और जवाबदेही के लोकतांत्रिक सिद्धांतों का विकासक्रम।

समवर्ती सूची (Concurrent)	समवर्ती विधायी सूची जैसी कोई पृथक वैधानिक व्यवस्था इस विलेख में अस्तित्व नहीं रखती थी।	36 विषयों की विस्तृत समवर्ती सूची; विधायी गतिरोध की स्थिति में केंद्रीय कानून सर्वोपरि।	वर्तमान भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची (विषय संतुलन कड़ी)।
न्यायिक अवसंरचना	कोई अखिल भारतीय स्तर का संघीय न्यायालय अस्तित्व में नहीं था; उच्च न्यायालय सीधे प्रिवी काउंसिल से संबद्ध थे।	1 अक्टूबर 1937 से 'संघीय न्यायालय' (Federal Court) की स्थापना (सर मॉरिस ग्वायर मुख्य न्यायाधीश)।	आधुनिक भारत के सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) का मूलभूत संस्थागत और विधिक ब्लूप्रिंट।
मौद्रिक व साख नियमन	केंद्रीय बैंक जैसी किसी विशिष्ट स्वायत्त संस्था का पूर्ण अभाव था; वित्तीय कमान सीधे वित्त विभाग के अधीन थी।	1 अप्रैल 1935 को 'भारतीय रिज़र्व बैंक' (RBI) की वैधानिक स्थापना (सर ओसबोर्न स्मिथ प्रथम गवर्नर)।	स्वतंत्र भारत की केंद्रीय बैंकिंग प्रणाली और मौद्रिक नीति नियमन का वास्तविक मूलाधार।
प्रादेशिक सीमांकन परिवर्तन	भारत के बाह्य भौगोलिक भूगोल में कोई बड़ा प्रादेशिक विस्थापन इस अधिनियम द्वारा नहीं किया गया।	बर्मा (म्यांमार) को भारत से पूरी तरह पृथक किया गया; सिंध व उड़ीसा नामक दो नए प्रांतों का गठन।	दक्षिण एशिया के आधुनिक राजनीतिक मानचित्र और भाषाई प्रादेशिक सीमाओं का विन्यास।
संवैधानिक संशोधन संप्रभुता	अधिनियम की धाराओं में आंशिक विधायी फेरबदल करने की सीमित शक्तियां गवर्नर-जनरल की परिषद को देय थीं।	संशोधन की पूर्ण वैधानिक संप्रभुता केवल ब्रिटिश संसद के पास सुरक्षित थी; भारतीय सदनों का अधिकार शून्य।	भारतीय नेताओं में पूर्ण संप्रभु 'संविधान सभा' (Constituent Assembly) के गठन की विधिक मांग का उग्र होना।

11. विनियामक कमियों और प्रशासनिक गतिरोधों का ऐतिहासिक प्रभाव प्रतिरूप

इन दोनों अधिनियमों के मध्य पाए जाने वाले सांख्यिकीय और प्रशासनिक विचलनों ने तत्कालीन भारत के राजनीतिक भूगोल को गहराई से प्रभावित किया, जिसका विश्लेषणात्मक विवरण निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा सुस्पष्ट है:

- **प्रांतों में उत्तरदायित्व का भ्रम और विफलता:** वर्ष 1919 के अधिनियम के प्रांतीय द्वैध शासन ने मंत्रियों को बिना बजट और बिना सिविल सेवा नियंत्रण के पंगु बना दिया था। इसी दोषपूर्ण अनुभव के विनियामक शमन हेतु 1935 के अधिनियम में 'प्रांतीय स्वायत्तता' का कपाट खोला गया। परंतु 1935 के अधिनियम में गवर्नर को दी गई **धारा 93 की निरंकुश आपातकालीन शक्ति** और मंत्रियों को बर्खास्त करने के विवेकाधीन विशेषाधिकारों ने इस स्वायत्तता को भी एक औपनिवेशिक भ्रम में तब्दील कर दिया। यही कारण था कि वर्ष 1937 में गठित कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने द्वितीय विश्व युद्ध के समय गवर्नर की निरंकुश प्रवृत्तियों के विरोध में अक्टूबर 1939 में सामूहिक रूप से विधिक त्यागपत्र दे दिया।
- **केंद्रीकृत वित्तीय संकीर्णता:** दोनों अधिनियमों में एक साझा अंतर्निहित कमी यह थी कि इनमें भारतीय व्यवस्थापिकाओं को वित्तीय संप्रभुता से पूरी तरह वर्जित रखा गया था। 1919 के अधिनियम में 65% और 1935 के अधिनियम में **लगभग 80% संघीय बजट का गैर-मतदान योग्य (Non-Votable) होना** यह सिद्ध करता है कि ब्रिटिश सरकार रक्षा और औपनिवेशिक सिविल सेवा के भारी खर्चों को

लोकतांत्रिक संवीक्षा से पूरी तरह मुक्त रखना चाहती थी। इस वित्तीय पंगुता ने कमान क्षेत्रों के आर्थिक विकास और लोक कल्याणकारी योजनाओं को बुरी तरह बाधित किया।

भारत शासन अधिनियम 1919 का द्विसदनीय एकसदनीय विस्थापन और भारत शासन अधिनियम 1935 का विस्तृत संघात्मक और त्रि-स्तरीय विधायी विन्यास ब्रिटिश साम्राज्यवादी कमान को भारत के भूगोल पर अक्षुण्ण बनाए रखने की एक सतत वैधानिक कड़ी थी। इन दोनों विलेखों की अंतर्निहित कमियों, चरम सांप्रदायिक निर्वाचन विखंडन चक्रों (10% तक विस्तार) और गवर्नर-जनरल के अभेद्य वीटो अधिकारों ने भले ही पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लक्ष्य को अवरुद्ध किया हो, परंतु इनके प्रशासनिक ढांचों, शक्तियों के त्रिविध आनुपातिक विभाजन (59, 54 व 36 विषयों का विन्यास), संघीय न्यायालय की स्थापना और प्रांतीय बजटीय प्रणालियों के वैज्ञानिक सिद्धांतों ने आधुनिक स्वतंत्र भारत के प्रशासनिक भूगोल और वित्तीय संघवाद के ऊर्ध्वाधर ऊँचे ढांचे को एक अत्यधिक सुदृढ़, परिपक्व और विधिक वैधानिक आधारशिला प्रदान की।

अध्याय 7: ऐतिहासिक विधिक मील के पथर: अगस्त प्रस्ताव, क्रिप्स मिशन, वेवेल योजना और कैबिनेट मिशन 1946

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके तुरंत बाद की अवधि भारतीय संवैधानिक इतिहास में विधिक कड़ियों के निर्माण और औपनिवेशिक सत्ता के हस्तांतरण की गतिकी का सबसे महत्वपूर्ण दौर थी। इस कालखंड में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तुत किए गए विभिन्न प्रस्ताव और विलेख केवल राजनीतिक गतिरोध दूर करने के प्रयास नहीं थे, बल्कि वे भविष्य की संप्रभु संविधान सभा और संघीय ढांचे की वैधानिक आधारशिला रख रहे थे।

1. अगस्त प्रस्ताव, 8 अगस्त 1940: औपनिवेशिक वादों का विनियामक सूत्रपात

द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) में कांग्रेस की सहमति के बिना भारत को शामिल करने के ब्रिटिश नीतिगत निर्णय के विरोध में प्रांतीय मंत्रिमंडलों ने अक्टूबर 1939 में सामूहिक रूप से विधिक त्यागपत्र दे दिया था। युद्ध की उग्र गतिकी और राष्ट्रवादी दबाव के शमन हेतु तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने 8 अगस्त 1940 को एक रणनीतिक वक्तव्य जारी किया, जिसे 'अगस्त प्रस्ताव' कहा जाता है।

1.1 अगस्त प्रस्ताव के प्रमुख विधिक व प्रशासनिक प्रावधान

- **डोमिनियन स्टेटस का दार्शनिक वादा:** ब्रिटिश सरकार ने पहली बार आधिकारिक रूप से यह विधिक संस्तुति प्रदान की कि भारत के लिए संवैधानिक विकास का मुख्य लक्ष्य 'डोमिनियन स्टेटस' (औपनिवेशिक स्वराज्य) की स्थापना करना है।
- **वायसराय की कार्यकारी परिषद का विस्तार:** युद्ध के तात्कालिक संचालन हेतु गवर्नर-जनरल की कार्यकारी परिषद (Executive Council) में भारतीय सदस्यों की संख्या में अभूतपूर्व सांख्यिकीय वृद्धि करने का निर्णय लिया गया।
- **युद्ध सलाहकार परिषद का गठन:** एक 'वॉर एडवाइजरी काउंसिल' स्थापित करने का विन्यास किया गया, जिसमें ब्रिटिश भारत के प्रांतों और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाना तय हुआ।
- **संविधान सभा की प्रारंभिक परिकल्पना:** ब्रिटिश सरकार ने पहली बार यह वैधानिक रूप से स्वीकार किया कि युद्ध की समाप्ति के बाद एक ऐसी संस्था का गठन किया जाएगा जो मुख्य रूप से भारतीय जनसांख्यिकी के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सिद्धांतों के सर्वथा अनुकूल नए संविधान का विनिर्माण करेगी।

1.2 अगस्त प्रस्ताव की अंतर्निहित विधिक सीमाएं और वीटो कड़ी

- **अल्पसंख्यकों को विनियामक वीटो:** इस प्रस्ताव में एक अत्यंत संकीर्ण वैधानिक कड़ी जोड़ी गई थी, जिसके तहत कहा गया कि ब्रिटिश सरकार किसी भी ऐसी शासन प्रणाली को सत्ता हस्तांतरित नहीं

करेगी जिसके प्रति भारत के शक्तिशाली और बड़े अल्पसंख्यक वर्गों (विशेष रूप से मुस्लिम लीग) की स्पष्ट विधिक असहमति हो। इसने भविष्य के सांप्रदायिक गतिरोधों को एक वैधानिक सुरक्षा कवच प्रदान किया।

- **पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य पर चोट:** चूँकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस वर्ष 1929 के लाहौर अधिवेशन से ही 'पूर्ण स्वराज्य' को अपना वैधानिक लक्ष्य मान चुकी थी, अतः डोमिनियन स्टेटस के इस औपनिवेशिक वादे को पूरी तरह खारिज कर दिया गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि डोमिनियन स्टेटस की अवधारणा "दरवाजे में जड़ी जंग लगी कील" के समान है।

2. क्रिप्स मिशन, मार्च 1942: युद्धकालीन विधायी अनुकूलन

दक्षिण-पूर्वी एशिया में जापानी सेनाओं के तीव्र भौगोलिक विस्तार और रंगून (बर्मा) के पतन के बाद ब्रिटिश सरकार पर मित्र देशों (विशेष रूप से अमेरिका के राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट और चीन के चियांग काई-शेक) का भारी कूटनीतिक दबाव पड़ा। इस जलवायवीय संकट के समाधान हेतु ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने ब्रिटिश युद्ध मंत्रिमंडल के एक वरिष्ठ सदस्य **सर स्टैफोर्ड क्रिप्स** को एक विनिर्दिष्ट विधिक प्रस्ताव के साथ मार्च 1942 में भारत भेजा।

2.1 क्रिप्स प्रस्तावों का द्विविध वैधानिक वर्गीकरण

क्रिप्स मिशन द्वारा प्रस्तुत किए गए विनियामक प्रावधानों को दो स्पष्ट कालिक श्रेणियों में विभाजित किया गया था: 'युद्ध के तुरंत बाद के दीर्घकालिक प्रावधान' और 'तत्कालीन युद्धकालीन अल्पकालिक प्रावधान'।

A. युद्ध के तुरंत बाद के दीर्घकालिक विधिक प्रावधान

1. **भारतीय संघ की स्थापना:** युद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद एक 'भारतीय संघ' (Indian Union) स्थापित किया जाएगा, जिसे पूर्ण डोमिनियन स्टेटस प्राप्त होगा। इसे राष्ट्रमंडल से अलग होने और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं में संप्रभु विलेख दर्ज करने की पूर्ण विधिक स्वतंत्रता होगी।
2. **संविधान सभा का गठन प्रतिरूप:** एक निर्वाचित संविधान सभा (Constituent Assembly) का गठन किया जाएगा। इसकी सदस्य संख्या का आनुपातिक विन्यास इस प्रकार होगा: प्रांतीय विधानसभाओं के निम्न सदनों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से निर्वाचित सदस्य तथा देशी रियासतों के राजाओं द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि।
3. **प्रांतीय पृथक्करण का वैधानिक कपाट (नॉन-एक्सेशन क्लॉज):** क्रिप्स प्रस्ताव की सबसे संवेदी विधिक कमी यह थी कि इसके तहत ब्रिटिश भारत के प्रांतों को यह वैधानिक अधिकार दिया गया कि यदि कोई प्रांत नवीन विनिर्मित संविधान को स्वीकार करने हेतु विधिक रूप से तैयार नहीं है, तो वह भारतीय संघ से अलग रहने का विनियामक निर्णय ले सकता है। ऐसे अलग रहने वाले प्रांतों को ब्रिटिश सरकार के साथ सीधे एक पृथक संवैधानिक विलेख या संधि करने का पूर्ण विधिक अधिकार होगा। इसने परोक्ष रूप से 'पाकिस्तान' के विनिर्माण की वैधानिक कड़ि को जन्म दिया।

B. तत्कालीन युद्धकालीन अल्पकालिक प्रावधान

- युद्ध के दौरान भारत की रक्षा (Defence) का संपूर्ण वास्तविक और विनियामक नियंत्रण ब्रिटिश सरकार के पास ही सुरक्षित रहेगा, तथा गवर्नर-जनरल की निरंकुश शक्तियां और उसकी 'विशेष जिम्मेदारियों' का वैधानिक ढांचा अबाधित बना रहेगा।

सारणी 7.1: क्रिप्स मिशन प्रस्तावों का ढांचागत विन्यास

विधायी श्रेणी	विनिर्दिष्ट विधिक प्रावधान	राजनीतिक निहितार्थ (विरोधाभास)
दीर्घकालिक लक्ष्य	पूर्ण डोमिनियन स्टेटस युक्त भारतीय संघ का गठन व संविधान सभा का निर्माण।	राष्ट्रमंडल से अलग होने की वैधानिक संप्रभुता देय थी।

प्रांतीय वीटो	प्रांतों को संघ से अलग रहने और पृथक विलेख बनाने का वैधानिक अधिकार।	भारत के भौगोलिक विखंडन का विधिक सूत्रपात।
अल्पकालिक व्यवस्था	रक्षा विभाग पर ब्रिटिश मिलिट्री कमान का पूर्ण और अबाधित एकाधिकार।	भारतीय मंत्रियों को बिना वास्तविक शक्ति के पंगु बनाए रखना।

2.2 क्रिप्स मिशन की असफलता और राजनीतिक प्रतिक्रियाएं

- **दिवालिया बैंक का चेक:** महात्मा गांधी ने क्रिप्स प्रस्तावों के भविष्यलक्षी चरित्र (Post-dated) की तीक्ष्ण आलोचना करते हुए इसे “उत्तर-तिथीय चेक” (Post-dated Cheque) की वैधानिक संज्ञा दी थी। कालांतर में इसमें “एक टूटते हुए बैंक का” (On a crashing bank) वाक्यांश भी जोड़ा गया।
- **मुस्लिम लीग की अस्वीकृति:** मुस्लिम लीग ने इस प्रस्ताव को इसलिए खारिज किया क्योंकि इसमें भारत के विभाजन और संप्रभु पाकिस्तान के विनिर्माण की मांग को सीधे और स्पष्ट विधिक शब्दों में स्वीकार नहीं किया गया था। इन विसंगतियों के कारण क्रिप्स मिशन पूरी तरह विफल रहा, जिसके प्रतिशोध में कांग्रेस ने अगस्त 1942 में **भारत छोड़ो आंदोलन** (Quit India Movement) प्रारंभ किया।

3. वेवेल योजना और शिमला सम्मेलन, जून-जुलाई 1945: अंतरिम कार्यपालिका विन्यास

विश्व युद्ध के अंतिम चरण में भारत के भीतर फैले प्रशासनिक गतिरोध और राजनीतिक शून्यता के शमन हेतु तत्कालीन गवर्नर-जनरल **लॉर्ड वेवेल** ने जून 1945 में एक प्रशासनिक पुनर्गठन योजना प्रस्तुत की, जिसे ‘**वेवेल योजना**’ कहा जाता है। इस योजना के विधिक प्रावधानों पर आम सहमति बनाने के लिए 25 जून से 14 जुलाई 1945 के मध्य शिमला में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया गया।

3.1 वेवेल योजना के मुख्य प्रशासनिक मापदंड

- **कार्यकारी परिषद का पूर्ण पुनर्गठन:** गवर्नर-जनरल और मुख्य सेनापति (Commander-in-Chief) को छोड़कर वायसराय की कार्यकारी परिषद के सभी सदस्यों का पद पूरी तरह भारतीय नेताओं को सौंप दिया जाएगा। रक्षा विभाग ब्रिटिश कमान के पास रहेगा, परंतु गृह, वित्त और विदेश जैसे महत्वपूर्ण विभाग भारतीय मंत्रियों के नियंत्रण में विस्थापित किए जाएंगे।
- **सांप्रदायिक लैंगिक संतुलन (हिंदू-मुस्लिम समानता):** इस योजना का सबसे विवादास्पद विधिक प्रतिरूप यह था कि वायसराय की परिषद में सवर्ण हिंदुओं और मुसलमानों को सांख्यिकीय रूप से पूर्ण समानता (Parity) दी गई थी, अर्थात् दोनों वर्गों को बराबर सीटें आवंटित की जानी थीं।

3.2 शिमला सम्मेलन की विफलता के अंतर्निहित विनियामक कारण

- **मुस्लिम लीग का विधिक वीटो:** मोहम्मद अली जिन्ना ने यह कड़ा विनियामक अड़ंगा लगाया कि वायसराय की परिषद में शामिल होने वाले सभी मुस्लिम सदस्यों का चयन करने का अनन्य विधिक अधिकार केवल और केवल मुस्लिम लीग के पास ही सुरक्षित होना चाहिए। कांग्रेस ने इस दावे को पूरी तरह खारिज कर दिया, क्योंकि वह स्वयं को संपूर्ण भारत की जनसांख्यिकी और धर्मनिरपेक्ष चरित्र का प्रतिनिधि मानती थी और अपनी ओर से मौलाना अबुल कलाम आजाद को परिषद में शामिल करना चाहती थी। लॉर्ड वेवेल ने मुस्लिम लीग के इस हठ के आगे घुटने टेकते हुए **14 जुलाई 1945 को शिमला सम्मेलन की विफलता की आधिकारिक विधिक घोषणा कर दी।**

4. कैबिनेट मिशन, मार्च 1946: संप्रभु संविधान सभा की आधारशिला

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटेन के राजनीतिक भूगोल में बड़ा विस्थापन हुआ। अनुदारवादी चर्चिल के स्थान पर लेबर पार्टी के **क्लीमेंट एटली** ब्रिटेन के नए प्रधानमंत्री बने। एटली ने 19 फरवरी 1946 को ब्रिटिश संसद में

भारत को पूर्ण स्वतंत्रता देने के वैधानिक अधिकार की घोषणा की। इस ऐतिहासिक सत्ता हस्तांतरण के विधिक तौर-तरीके और संविधान सभा के गठन का ब्लूप्रिंट तैयार करने के लिए ब्रिटिश कैबिनेट के तीन वरिष्ठ मंत्रियों का एक उच्च स्तरीय दल भारत भेजा गया, जिसे 'कैबिनेट मिशन' कहा जाता है।

4.1 कैबिनेट मिशन के सदस्य और विनियामक पद आर्डर

इस मिशन में ब्रिटिश सरकार के निम्नलिखित तीन कैबिनेट मंत्री विधिक रूप से शामिल थे:

1. **लॉर्ड पैथिक-लॉरेंस (Lord Pethick-Lawrence):** तत्कालीन भारत सचिव (Secretary of State for India) - यह इस मिशन के आधिकारिक अध्यक्ष थे।
2. **सर स्टैफोर्ड क्रिप्स (Sir Stafford Cripps):** बोर्ड ऑफ ट्रेड के अध्यक्ष।
3. **ए. वी. अलेक्जेंडर (A. V. Alexander):** नौसेना के प्रथम लॉर्ड (First Lord of the Admiralty)।

4.2 कैबिनेट मिशन योजना के सर्वप्रमुख विधिक व संवैधानिक प्रावधान

कैबिनेट मिशन ने लंबी त्रिपक्षीय वार्ताओं के बाद 16 मई 1946 को अपना ऐतिहासिक और विस्तृत संवैधानिक प्रस्ताव प्रख्यापित किया, जिसके मुख्य बिंदु स्वतंत्र भारत के प्रशासनिक भूगोल के मूलाधार बने:

A. पाकिस्तान की विधिक मांग का पूर्ण निरसन

- **अखंड भारतीय संघ का समर्थन:** मिशन ने मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्तुत की जा रही संप्रभु और पृथक पाकिस्तान की मांग को भौगोलिक, सामरिक और प्रशासनिक आधारों पर **पूरी तरह विधिक रूप से खारिज कर दिया**। मिशन का यह निष्कर्ष था कि दो पृथक राज्यों का विनिर्माण रक्षा, संचार और डाक-तार प्रणालियों को पूरी तरह पंगु बना देगा।

B. त्रि-स्तरीय ब्रिटिश भारत संघ (Three-tier Federation)

मिशन ने भारत के लिए एक शिथिल केंद्रीकृत और त्रि-स्तरीय संघीय ढांचे की परिकल्पना प्रस्तुत की, जिसके विधायी क्षेत्राधिकार इस प्रकार विभाजित थे:

- **संघीय कमान:** केंद्रीय सरकार के पास केवल तीन सर्वप्रमुख और रणनीतिक विषय विन्यासित रहेंगे—**रक्षा (Defence), विदेशी मामले (External Affairs), तथा संचार (Communications)**। इन विषयों के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों को जुटाने हेतु कर लगाने की विधिक शक्ति भी केंद्र के पास सुरक्षित की गई।
- **प्रांतीय स्वायत्तता और अवशिष्ट शक्तियां:** संघ सूची के इन तीन विषयों के अतिरिक्त शेष समस्त विधायी विषय और सभी **अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers)** **विधिक रूप से प्रांतों और देशी रियासतों को हस्तांतरित कर दी गईं**। यह भारत शासन अधिनियम 1935 के सर्वथा विपरीत विन्यास था।

C. प्रांतों का अनिवार्य वर्गीकरण या समूहीकरण (Grouping of Provinces)

विधायी और सामाजिक समरूपता के आधार पर ब्रिटिश भारत के प्रांतों को तीन विनिर्दिष्ट समूहों (Groups/Provinces) में विधिक रूप से विभाजित किया गया, जो इस प्रकार था:

- **समूह 'A' (हिंदू बहुल प्रांत):** मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्य प्रांत एवं बरार, तथा उड़ीसा।
- **समूह 'B' (उत्तर-पश्चिम मुस्लिम बहुल प्रांत):** पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत, और सिंध।
- **समूह 'C' (उत्तर-पूर्व मुस्लिम बहुल प्रांत):** बंगाल और असम।
- **संविधान निर्माण की गतिकी:** नियमों के अनुसार, पहले ये समूह अपने-अपने प्रांतीय और समूह स्तर के संविधानों का निर्माण करेंगे, तत्पश्चात संयुक्त रूप से पूरे भारतीय संघ के संविधान का विनिर्माण किया जाना तय हुआ था।

सारणी 7.2: कैबिनेट मिशन के तहत प्रांतों का त्रि-स्तरीय समूहीकरण (Grouping)

समूह कड़ी	शामिल ब्रिटिश भारत के प्रांत	जनसांख्यिकीय चरित्र	विधायी स्तर
समूह 'A'	मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्य प्रांत, उड़ीसा	हिंदू बहुल संभाग	पहले प्रांतीय संविधान निर्माण, फिर समूह स्तर पर विधायी समन्वय।

समूह 'B'	पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत (NWFP), सिंध	उत्तर-पश्चिम मुस्लिम बहुल	इन समूहों को अपने आंतरिक प्रशासन के नियम तय करने की स्वायत्तता थी।
समूह 'C'	बंगाल और असम	उत्तर-पूर्व मुस्लिम बहुल	असम के समूह 'C' में शामिल होने पर भारी राजनीतिक गतिरोध उत्पन्न हुआ।

D. संविधान सभा (Constituent Assembly) का गठन और चुनाव प्रतिरूप

कैबिनेट मिशन ने वयस्क मताधिकार के आधार पर सीधे चुनाव कराने की व्यावहारिक कठिनाइयों और सांख्यिकीय समय हास को देखते हुए 'अप्रत्यक्ष निर्वाचन' (Indirect Election) की विधि को विधिक रूप से स्वीकार किया।

- **कुल सांख्यिकीय सदस्य संख्या:** संविधान सभा की कुल सदस्य संख्या 389 निश्चित की गई थी, जिसका विनियामक वर्गीकरण इस प्रकार निर्धारित था:
 - **292 सदस्य:** 11 ब्रिटिश भारत के प्रांतों की विधानसभाओं से चुने जाने थे।
 - **93 प्रतिनिधि:** देशी रियासतों (Princely States) के शासकों द्वारा मनोनिवेदन प्रतिरूप पर नामांकित किए जाने थे।
 - **4 सदस्य:** मुख्य आयुक्तों (Chief Commissioners) के प्रांतों (यथा- दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा, कूर्ग, और ब्रिटिश बलूचिस्तान) से विधिक रूप से देय थे।
- **आनुपातिक प्रतिनिधित्व का पैमाना:** प्रादेशिक प्रतिनिधित्व को न्यायसंगत बनाने के लिए यह विधिक पैमाना निर्धारित किया गया कि **प्रत्येक प्रांत को उसकी कुल जनसांख्यिकी के अनुपात में सीटें आवंटित की जाएंगी, जिसमें मोटे तौर पर प्रति 10 लाख की आबादी पर 1 सीट का सांख्यिकीय अनुपात निश्चित था।** प्रांतों की सीटों को तीन मुख्य समुदायों—सामान्य, मुस्लिम और सिख (केवल पंजाब में) के मध्य उनकी जनसंख्या के अनुपात में विधिक रूप से विभाजित किया गया था।

5. अंतरिम सरकार (Interim Government) का गठन, सितंबर 1946

कैबिनेट मिशन योजना के दूसरे भाग के तहत देश का तात्कालिक प्रशासनिक संचालन करने और नए संविधान के निर्माण तक विधायी निरंतरता बनाए रखने के लिए एक 'अंतरिम सरकार' के गठन का विधिक प्रावधान किया गया था।

- **विधिक स्थापना की तिथि:** 2 सितंबर 1946 को पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारत की पहली आधिकारिक अंतरिम सरकार का गठन किया गया। * **प्रशासनिक विन्यास:** इस अंतरिम परिषद के विधिक अध्यक्ष स्वयं वायसराय (लॉर्ड वेवेल) थे, जबकि पंडित नेहरू को उप-उपाध्यक्ष (Vice-President) तथा विदेश व राष्ट्रमंडल मामलों का कार्यकारी कपाट सौंपा गया था। प्रारंभ में मुस्लिम लीग इसमें शामिल नहीं हुई, परंतु अक्टूबर 1946 में वह सरकार को भीतर से पंगु बनाने की रणनीतिक विधा के साथ इसमें सम्मिलित हुई। लीग के **लियाकत अली खान** को वित्त विभाग (Finance) सौंपा गया, जिन्होंने अपने बजट प्रस्तावों द्वारा अंतरिम सरकार के प्रशासनिक कार्यों में भारी गतिरोध उत्पन्न किया।

6. समेकित तुलनात्मक विन्यास: चारों ऐतिहासिक विलेखों का विश्लेषण

सारणी 7.3: अगस्त प्रस्ताव से कैबिनेट मिशन तक की संवैधानिक विकास यात्रा

वैधानिक का पथर	मील	आधिकारिक तिथि कूट	प्राथमिक नोडल प्राधिकारी	सर्वप्रमुख विधिक / संवैधानिक विशेषता	राजनीतिक गतिरोध का मूल विनियामक कारण

अगस्त प्रस्ताव	8 अगस्त 1940	लॉर्ड लिनलिथगो	पहली बार डोमिनियन स्टेटस का विधिक वादा व संविधान सभा की धुंधली परिकल्पना।	अल्पसंख्यकों को विधिक वीटो देना; कांग्रेस द्वारा 'पूर्ण स्वराज्य' के कारण पूर्ण अस्वीकृति।
क्रिप्स मिशन	मार्च 1942	सर स्टैफोर्ड क्रिप्स	युद्ध के बाद संप्रभु संघ की स्थापना; प्रांतों को संघ से अलग रहने का अनन्य विधिक अधिकार।	नॉन-एक्सेशन क्लॉज द्वारा भारत के विखंडन का बीज बोना; गांधीजी द्वारा 'उत्तर-तिथीय चेक' की संज्ञा।
वेवेल योजना	जून 1945	लॉर्ड वेवेल	वायसराय की परिषद का पूर्ण भारतीयकरण; सवर्ण हिंदुओं और मुस्लिमों को सांख्यिकीय समानता।	जिन्ना का हठ कि सभी मुस्लिम सदस्य केवल मुस्लिम लीग ही चुनेगी; शिमला सम्मेलन की विफलता।
कैबिनेट मिशन	मार्च 1946	लॉर्ड पैथिक-लॉरेंस (अध्यक्ष)	पाकिस्तान की मांग का विधिक निरसन; 389 सदस्यीय अप्रत्यक्ष निर्वाचित संविधान सभा का ब्लूप्रिंट।	प्रांतों के अनिवार्य समूहीकरण (Grouping) पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य उत्पन्न तीव्र विधिक मतभेद।

7. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **डोमिनियन स्टेटस (Dominion Status):** ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहते हुए आंतरिक प्रशासन और कानून निर्माण के क्षेत्र में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त करने का वैधानिक स्वरूप, जहाँ राज्य का विधिक प्रधान ब्रिटिश क्राउन ही बना रहता है।
- **उत्तर-तिथीय चेक (Post-dated Cheque):** भविष्य के वादों पर आधारित वह विधिक विलेख जिसकी तात्कालिक प्रासंगिकता और वित्तीय तरलता पूरी तरह शून्य होती है, जैसा गांधीजी ने क्रिप्स प्रस्ताव को कहा था।
- **नॉन-एक्सेशन क्लॉज (Non-accession Clause):** क्रिप्स प्रस्ताव की वह विसंगतिपूर्ण कानूनी धारा जिसके तहत प्रांतों को भारतीय संघ में शामिल न होने और अपना पृथक संविधान बनाने की वैधानिक छूट दी गई थी।
- **अनिवार्य समूहीकरण (Mandatory Grouping):** कैबिनेट मिशन की वह रणनीतिक विधा जिसके तहत प्रांतों को उनके धार्मिक बाहुल्य के आधार पर तीन विशिष्ट समूहों (A, B, C) में विभाजित कर पहले समूह स्तर का संविधान बनाना विधिक रूप से अनिवार्य किया गया था।
- **अंतरिम सरकार (Interim Government):** सत्ता के पूर्ण हस्तांतरण से पूर्व संक्रमण काल के दौरान देश का प्रशासनिक और बजटीय संचालन करने के लिए विनिर्मित अस्थाई लोक सरकार।
- **मेटासोमैटिक सत्ता विस्थापन:** औपनिवेशिक साम्राज्यवादी कमान का क्रमिक रूप से संप्रभु, निर्वाचित और स्वदेशी संविधान सभा के हाथों में होने वाला पूर्ण विधायी वैधानिक हस्तांतरण प्रक्रम।

8. इन ऐतिहासिक विलेखों का आधुनिक भारतीय प्रशासनिक भूगोल पर प्रभाव

इन चारों मील के पथरों के विनियामक प्रावधानों और उनके कारण उत्पन्न राजनीतिक गतिरोधों ने भारत के समकालीन प्रशासनिक और विधायी भूगोल को दूरगामी रूप से प्रभावित किया, जिसका विवरण निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा सुस्पष्ट है:

8.1 केंद्रीकरण बनाम प्रादेशिक स्वायत्तता का विरोधाभास

- भारत शासन अधिनियम 1935 ने जहाँ केंद्र को मजबूत बनाते हुए अवशिष्ट शक्तियां वायसराय को सौंपी थीं, वहीं वर्ष 1946 के कैबिनेट मिशन ने संघ को अत्यधिक कमजोर (केवल रक्षा, विदेश व संचार तक सीमित) बनाते हुए अवशिष्ट शक्तियां प्रांतों को हस्तांतरित कर दी थीं। मिशन का यह नीतिगत निर्णय मुस्लिम लीग को शांत रखने और अखंड भारत को बचाने का एक अंतिम विधिक प्रयास था।
- परंतु विभाजन के बाद, स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माताओं ने कैबिनेट मिशन के इस कमजोर संघ के मॉडल को पूरी तरह त्याग दिया और एक 'मजबूत केंद्र वाले कूट' (कनाडा का मॉडल) को विधिक रूप से स्वीकार किया, जिसके तहत अवशिष्ट शक्तियां संसद (अनुच्छेद 248) को सौंपी गईं।

8.2 संविधान सभा के गठन की आनुवंशिक कड़ि

- हमारी वर्तमान संसद और संविधान की मूल जननी—अर्थात् भारतीय संविधान सभा का वास्तविक गठन पूरी तरह इसी कैबिनेट मिशन योजना 1946 के विनिर्देशों के अनुसार ही किया गया था। जुलाई-अगस्त 1946 में संपन्न हुए चुनावों के बाद निर्मित 389 सदस्यीय इसी सभा ने (जो विभाजन के बाद 299 रह गई) 9 दिसंबर 1946 से कार्य प्रारंभ कर स्वतंत्र भारत के आधुनिक लोकतांत्रिक और रक्षात्मक संविधान का विनिर्माण किया।

9. औपनिवेशिक विलेखों के समक्ष भू-राजनीतिक एवं प्रशासनिक चुनौतियां

द्वितीय विश्व युद्ध के अंतिम वर्षों में ब्रिटिश सरकार के इन सभी प्रस्तावों के व्यावहारिक क्रियान्वयन के समक्ष कई गंभीर भू-राजनीतिक और ढांचागत चुनौतियां विद्यमान थीं, जिनका प्रशासनिक शमन तात्कालिक परिस्थितियों में जटिल सिद्ध हुआ:

1. **सांप्रदायिक आधार पर जोतों का विखंडन और दंगे (Direct Action Day):** कैबिनेट मिशन द्वारा पाकिस्तान की मांग को विधिक रूप से खारिज किए जाने के प्रतिशोध में मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' (Direct Action Day) की घोषणा की। इसके परिणामस्वरूप नोआखली (बंगाल), पंजाब और बिहार के जलोढ़ मैदानी अंचलों (Alfisols मृदा क्षेत्रों) में भीषण सांप्रदायिक दंगे भड़क उठे। इस मानवीय विभीषिका और जनसांख्यिकीय विस्थापन ने अंतरिम सरकार के प्रशासनिक कपाटों को पूरी तरह पंगु बना दिया, जिससे कानून-व्यवस्था बनाए रखने की ब्रिटिश सैन्य कमान विफल सिद्ध हुई।
2. **अंतरिम कार्यपालिका के भीतर बजटीय गतिरोध (Financial Gridlock):** अंतरिम सरकार में लियाकत अली खान को वित्त विभाग सौंपा जाना एक बड़ी विनियामक भूल सिद्ध हुई। उन्होंने वित्त मंत्री के रूप में अपने 'अंतरिम बजट 1947' में कड़े कर प्रावधानों द्वारा राष्ट्रवादी उद्योगपतियों और कांग्रेस कमान के व्यापारिक हितों पर सीधी चोट की। इसके अतिरिक्त, वे अन्य विभागों (जैसे उद्योग व गृह) की प्रत्येक लोक कल्याणकारी योजना की फाइलों को वित्तीय विन्यास की संकीर्ण संवीक्षा द्वारा विधिक रूप से अटका देते थे। इस प्रशासनिक गतिरोध से तंग आकर ही सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह निष्कर्ष निकाला था कि "अब विभाजन के बिना कोई अन्य वैधानिक विकल्प शेष नहीं है।"
3. **देशी रियासतों की संप्रभुता का विद्रोही विन्यास:** कैबिनेट मिशन ने यह विधिक प्रावधान किया था कि ब्रिटिश संप्रभुता (Paramountcy) के अंत के बाद रियासतें स्वेच्छा से भारतीय संघ में शामिल हो सकती हैं अथवा स्वतंत्र रह सकती हैं। इस वैधानिक ढील का दुरुपयोग करते हुए हैदराबाद, भोपाल और त्रावणकोर जैसी बड़ी रियासतों के शासकों ने भारतीय संघ में शामिल होने से साफ मना कर दिया और अपनी पृथक संप्रभुता के विलेख तैयार करने लगे, जिसने भारत के भू-राजनीतिक नक्शे पर

'बाल्कनाइजेशन' (Balkanization) का गंभीर संकट उत्पन्न कर दिया, जिसे बाद में सरदार पटेल ने विधिक व सैन्य गतिकी द्वारा शमित किया।

10. सतत प्रादेशिक संवैधानिक नियोजन एवं भावी विज़न

इन सभी ऐतिहासिक विलेखों (अगस्त प्रस्ताव, क्रिप्स मिशन, वेवेल योजना, कैबिनेट मिशन) का क्रमिक विकासक्रम यह प्रामाणिक रूप से प्रमाणित करता है कि भारत का आधुनिक संविधान किसी आकस्मिक क्रांति का परिणाम नहीं, बल्कि औपनिवेशिक नियंत्रणों, विधायी सूचियों के आनुपातिक विभाजनों और सांप्रदायिक गतिरोधों के मध्य से निकली एक अत्यंत परिपक्व विधिक विकास यात्रा का परिणाम है।

- **कैबिनेट मिशन से प्राप्त विनियामक सीख:** कैबिनेट मिशन द्वारा प्रस्तावित कमजोर केंद्र और प्रांतों का अनिवार्य सांप्रदायिक वर्गीकरण (Grouping) व्यावहारिक रूप से देश की अखंडता के लिए अत्यधिक संवेदी था। स्वतंत्र भारत के मनीषियों ने इस ऐतिहासिक अनुभव का वैज्ञानिक विश्लेषण कर एक ऐसी संतुलित संघीय प्रणाली का विनिर्माण किया जो राज्यों को अपनी सांस्कृतिक और प्रादेशिक पहचान बनाए रखने की स्वायत्तता (भाग XI) भी देती है, तथा आपातकाल (अनुच्छेद 352-360) के समय संपूर्ण विधायी कमान केंद्र को सौंपकर देश की संप्रभुता को एक विधिक वैधानिक आधारशिला भी प्रदान करती है।

अध्याय 8: संविधान सभा का गठन: प्रांतीय विधानसभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व और चुनाव प्रतिरूप

1. संविधान सभा के गठन की ऐतिहासिक एवं वैधानिक पृष्ठभूमि

भारत में एक संप्रभु संविधान सभा (Constituent Assembly) के गठन की मांग का इतिहास राष्ट्रीय आंदोलन की वैधानिक और लोकतांत्रिक चेतना के विकास से जुड़ा हुआ है। औपचारिक रूप से भारत के लिए एक पृथक संविधान सभा का विचार सर्वप्रथम वर्ष 1934 में वामपंथी नेता एम. एन. रॉय (मानवेंद्र नाथ रॉय) द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इसके पश्चात वर्ष 1935 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पहली बार अपने आधिकारिक मंच से भारत के संविधान निर्माण के लिए एक परिनियत संविधान सभा के गठन की मांग की। वर्ष 1938 में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने घोषणा की कि स्वतंत्र भारत के संविधान का विनिर्माण बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा द्वारा किया जाएगा।

ब्रिटिश सरकार ने इस मांग को सैद्धांतिक रूप से पहली बार अगस्त प्रस्ताव (1940) में स्वीकार किया, तथा क्रिप्स मिशन (1942) में इसके प्रत्यक्ष विन्यास का खाका प्रस्तुत किया गया। परंतु, द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात वर्ष 1946 में भारत भेजे गए 'कैबिनेट मिशन' (Cabinet Mission Plan) के विशिष्ट विधानिक और प्रशासनिक प्रस्तावों के तहत ही अंततः भारतीय संविधान सभा का वास्तविक गठन और चुनाव प्रतिरूप विधिक रूप से सुनिश्चित हुआ।

2. कैबिनेट मिशन योजना के तहत सीटों का आनुपातिक आवंटन

कैबिनेट मिशन (लॉर्ड पैथिक-लॉरेंस, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स और ए. वी. अलेक्जेंडर) ने 16 मई 1946 को अपनी योजना प्रख्यापित की। मिशन ने वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष चुनाव कराने की व्यावहारिक कठिनाइयों (समय का हास और विशाल सांख्यिकीय जनसांख्यिकी) को देखते हुए प्रांतीय विधानसभाओं के निम्न सदनों के माध्यम से **अप्रत्यक्ष निर्वाचन** (Indirect Election) की विधा को वैधानिक रूप से स्वीकार किया।

2.1 कुल सदस्य संख्या का सांख्यिकीय विन्यास

कैबिनेट मिशन योजना के विनिर्देशों के अनुसार संविधान सभा की कुल सदस्य संख्या **389** निश्चित की गई थी। इन 389 सीटों का विभाजन भारतीय राजनीतिक भूगोल के तत्कालीन विन्यास के अनुरूप निम्नलिखित तीन मुख्य विधिक श्रेणियों के अंतर्गत किया गया था:

- **ब्रिटिश भारत के प्रांत:** कुल **292 सदस्य** 11 गवर्नर के अधीन आने वाले ब्रिटिश प्रांतों (यथा- मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्त प्रांत, पंजाब, बिहार, मध्य प्रांत एवं बरार, असम, उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत, उड़ीसा और सिंध) से आनुपातिक रूप से निर्वाचित होने थे।
- **मुख्य आयुक्तों के प्रांत (Chief Commissioners' Provinces):** कुल **4 सदस्य** चार विशिष्ट प्रशासनिक आयुक्त क्षेत्रों से देय थे। ये चार क्षेत्र निम्नानुसार थे:
 1. दिल्ली
 2. अजमेर-मेरवाड़ा
 3. कूर्ग (आधुनिक कर्नाटक का हिस्सा)
 4. ब्रिटिश बलूचिस्तान (वर्तमान पाकिस्तान में)
- **देशी रियासतें (Princely States):** कुल **93 प्रतिनिधि** देशी रियासतों के राजाओं और नवाबों के विन्यास से मनोनीत किए जाने हेतु वैधानिक रूप से आरक्षित किए गए थे।

सारणी 8.1: संविधान सभा की प्रारंभिक सीटों का संरचनात्मक वर्गीकरण

प्रशासनिक/प्रादेशिक श्रेणी	कुल आवंटित सीटें	चयन की वैधानिक विधा
गवर्नर के अधीन ब्रिटिश प्रांत (11 प्रांत)	292	प्रांतीय विधानसभाओं द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन
मुख्य आयुक्त के प्रांत (4 क्षेत्र)	04	विशिष्ट आयुक्त क्षेत्रों से विधायी प्रतिनिधित्व
देशी रियासतें (Princely States)	93	रियासतों के शासकों द्वारा सीधा मनोनयन
कुल संकलित सदस्य संख्या	389	आंशिक निर्वाचित एवं आंशिक मनोनीत संस्तर

2.2 जनसांख्यिकीय आनुपातिक पैमाना

प्रादेशिक प्रतिनिधित्व को न्यायसंगत और रक्षात्मक बनाने के लिए कैबिनेट मिशन ने एक निश्चित गणितीय पैमाना निर्धारित किया था। इसके तहत यह विधिक नियम प्रख्यापित किया गया कि प्रत्येक प्रांत और रियासत को उसकी कुल जनसांख्यिकी के आनुपातिक आयतन के आधार पर सीटें आवंटित की जाएंगी। इसके लिए **प्रति 10 लाख की आबादी पर 1 सीट (1 Seat per 1 Million Population)** का सांख्यिकीय अनुपात निश्चित किया गया था।

3. सांप्रदायिक और वर्गीय विधायी विभाजन प्रतिरूप

ब्रिटिश प्रांतों को आवंटित कुल 296 सीटों (292 प्रांत + 4 मुख्य आयुक्त क्षेत्र) को पूरी तरह सांप्रदायिक और सामाजिक आधार पर तीन सर्वप्रमुख विनिर्दिष्ट समुदायों के मध्य उनकी जनसंख्या के आनुपातिक हिस्से के अनुसार वैधानिक रूप से विभाजित किया गया था। ये तीन मान्यता प्राप्त समुदाय निम्नलिखित थे:

- **मुस्लिम समुदाय:** इनके लिए कुल **78 सीटें** विधिक रूप से आरक्षित थीं, जिन पर केवल मुस्लिम मतदाता (प्रांतीय विधानसभाओं के मुस्लिम सदस्य) ही अपने प्रतिनिधि चुन सकते थे।
- **सिख समुदाय:** इनके लिए कुल **4 सीटें** विनिर्दिष्ट थीं। यह व्यवस्था मुख्य रूप से पंजाब प्रांत के विधायी संरक्षण तक ही विधिक रूप से सीमित थी।
- **सामान्य वर्ग (General):** इसके अंतर्गत मुसलमानों और सिखों को छोड़कर शेष समस्त धार्मिक और सामाजिक समूहों (यथा- हिंदू, अनुसूचित जातियां, जैन, बौद्ध, पारसी, एंग्लो-इंडियन और यूरोपीय) को सम्मिलित किया गया था। इस वर्ग के लिए कुल **214 सीटें** विन्यासित की गई थीं।

4. प्रांतीय विधानसभाओं द्वारा अप्रत्यक्ष चुनाव प्रतिरूप की विधिक गतिकी

जुलाई-अगस्त 1946 में ब्रिटिश भारत के प्रांतों की 296 सीटों के लिए ऐतिहासिक चुनाव संपन्न हुए। इन चुनावों का तकनीकी और विधिक प्रतिरूप आधुनिक लोकतांत्रिक प्रणालियों के विन्यास को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

4.1 एकल संक्रमणीय मत और आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली

प्रांतों के प्रतिनिधियों का चुनाव वर्ष 1935 के अधिनियम के तहत गठित प्रांतीय विधानसभाओं (Provincial Legislative Assemblies) के सदस्यों द्वारा किया गया था। चुनाव की तकनीकी विधा 'आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति' (Proportional Representation System) के अनुसार 'एकल संक्रमणीय मत प्रणाली' (Single Transferable Vote System) द्वारा संचालित की गई थी। इसके अंतर्गत प्रांतीय विधानसभा के प्रत्येक सदस्य को वरीयता के आधार पर मत देने का विधिक वैधानिक अधिकार प्राप्त था, जो हमारे वर्तमान संविधान में राज्यसभा के सदस्यों और राष्ट्रपति के चुनाव प्रतिरूप का मूल आनुवंशिक पूर्वज है।

4.2 आंशिक निर्वाचित और आंशिक मनोनीत स्वरूप

संवैधानिक सिद्धांतों के दृष्टिकोण से भारतीय संविधान सभा पूरी तरह से एक संप्रभु वयस्क मताधिकार आधारित चुनी हुई संस्था नहीं थी। यह 'आंशिक रूप से निर्वाचित' (Partly Elected) और 'आंशिक रूप से मनोनीत' (Partly Nominated) निकाय थी। जहाँ ब्रिटिश भारत के प्रांतों के 296 सदस्य अप्रत्यक्ष विधायी निर्वाचन द्वारा चुनकर आए थे, वहीं देशी रियासतों के 93 प्रतिनिधियों का चयन किसी चुनाव विधा से नहीं, बल्कि सीधे रियासतों के शासकों की इच्छा और मनोनयन (Nomination) के विधिक विन्यास पर आश्रित था।

5. जुलाई-अगस्त 1946 के चुनावी परिणामों का सांख्यिकीय विश्लेषण

296 सीटों पर हुए चुनावों के परिणाम भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के समकालीन राजनीतिक भूगोल और दलीय प्रवृत्तियों को पूरी तरह स्पष्ट करते हैं। इन परिणामों ने देश के भावी विभाजन की विधिक गतिकी को भी तीव्र किया।

- **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सांख्यिकीय सर्वोच्चता:** कांग्रेस ने इन चुनावों में अभूतपूर्व प्रदर्शन करते हुए सामान्य वर्ग की सीटों के साथ-साथ कई अन्य क्षेत्रों में भी विजय प्राप्त की। **कांग्रेस को कुल 208 सीटें प्राप्त हुईं**, जिससे वह संविधान सभा के भीतर सबसे विशाल विधायी शक्ति केंद्र बनकर उभरी।
- **मुस्लिम लीग का सांप्रदायिक संकेंद्रीकरण:** मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए आरक्षित 78 सीटों में से **73 सीटों पर विधिक रूप से विजयी रही**। इस सांख्यिकीय संकेंद्रीकरण के बावजूद, कुल 389 सदस्यीय सदन में कांग्रेस की तुलना में स्वयं को अत्यधिक अल्पसंख्यक पाकर लीग नेतृत्व में गहरा राजनीतिक असंतोष व्याप्त हुआ।
- **लघु दलों और निर्दलीय उम्मीदवारों का विन्यास:** शेष 15 सीटें छोटे राजनीतिक दलों और स्वतंत्र उम्मीदवारों के खाते में गईं, जिनका दलवार वर्गीकरण इस प्रकार था:
 - यूनियनिस्ट पार्टी (पंजाब) = 1 सीट
 - यूनियनिस्ट मुस्लिम = 1 सीट
 - यूनियनिस्ट शिङ्गूल्ड कास्ट = 1 सीट
 - कृषक प्रजा पार्टी (बंगाल) = 1 सीट
 - अछूत फेडरेशन (शिङ्गूल्ड कास्ट फेडरेशन - डॉ. अंबेडकर की पार्टी) = 1 सीट
 - सिख (गैर-कांग्रेस) = 1 सीट
 - कम्युनिस्ट पार्टी (साम्यवादी दल) = 11 सीट
 - निर्दलीय (독립) उम्मीदवार = 8 सीटें

सारणी 8.2: जुलाई-अगस्त 1946 के चुनावी परिणामों का दलीय विन्यास

राजनीतिक दल / वैधानिक समूह का नाम	विनिर्दिष्ट प्राप्त सीटें	सांख्यिकीय प्रतिशत भार
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	208	70.27% (प्रांतीय सीटों का हिस्सा)

मुस्लिम लीग	73	24.66%
निर्दलीय उम्मीदवार	08	2.70%
अन्य लघु राजनैतिक दल (प्रत्येक 1 सीट)	07	2.37%
कुल निर्वाचित सीटें	296	100%

6. संविधान सभा का सामाजिक और जनसांख्यिकीय प्रतिनिधित्व

यद्यपि संविधान सभा प्रत्यक्ष वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित नहीं थी, फिर भी इसके अप्रत्यक्ष चुनाव प्रतिरूप के कोलाइडल गुणों के कारण इसमें समकालीन भारत के समस्त सामाजिक, धार्मिक, लैंगिक और नृवंशविज्ञान समूहों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ:

- **महिला जनसांख्यिकी का प्रतिनिधित्व:** भारतीय संविधान सभा के प्रारंभिक संस्तर में कुल 15 महिला सदस्य शामिल थीं, जिन्होंने भारत के महिला सशक्तिकरण और लैंगिक न्याय के विधिक सिद्धांतों के निर्माण में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। इन 10 प्रमुख महिला सदस्यों में सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, सुचेता कृपलानी, विजयलक्ष्मी पंडित, जी. दुर्गाबाई, हंसा मेहता, रेणुका राय, मालती चौधरी, बेगम ऐजाज़ रसूल (एकमात्र मुस्लिम महिला सदस्य) और अम्मू स्वामीनाथन सर्वप्रमुख थीं।
- **अनुसूचित जातियों और जनजातियों का अनुपात:** सभा के भीतर शोषित और अपवंचित वर्गों के विधिक अधिकारों के संरक्षण हेतु व्यापक सांख्यिकीय प्रतिनिधित्व था। इसमें कुल 26 सदस्य अनुसूचित जाति (SC) के तथा 33 सदस्य अनुसूचित जनजाति (ST) वर्ग के विधिक रूप से शामिल थे।
- **विविध धार्मिक समूहों का संरक्षण:** फ्रैंक एंथनी ने एंग्लो-इंडियन (आंग्ल-भारतीय) समुदाय का वैधानिक नेतृत्व किया, जबकि एच. पी. मोदी (होमी मोदी) ने पारसी धार्मिक अल्पसंख्यक समूह को विशिष्ट विधायी प्रतिनिधित्व प्रदान किया।

7. देशी रियासतों के मनोनयन प्रतिरूप की विधिक गतिकी एवं गतिरोध

देशी रियासतों को आवंटित 93 सीटों का विन्यास प्रारंभ में पूरी तरह निष्क्रिय रहा। कैबिनेट मिशन के विनिर्देशों के अनुसार, रियासतों के राजाओं को अपने प्रतिनिधियों को नामांकित करने के लिए एक विधिक प्रक्रिया का पालन करना था।

- **समझौता समिति (Negotiation Committee) का गठन:** संविधान सभा द्वारा गठित 'वार्ताकार समिति' और देशी रियासतों के शासकों के नरेंद्र मंडल (Chamber of Princes) की समिति के मध्य सीटों के आंतरिक आनुपातिक वितरण को लेकर लंबी विधिक चर्चाएं हुईं।
- **प्रारंभिक बहिष्कार की नीति:** मुस्लिम लीग के बहकावे में आकर तथा अपनी आंतरिक संप्रभुता खोने के डर से अधिकांश बड़ी रियासतों (यथा- हैदराबाद, भोपाल, त्रावणकोर) ने प्रारंभिक दौर में **संविधान सभा की बैठकों का पूर्ण विधिक बहिष्कार किया**। हैदराबाद एकमात्र ऐसी विशाल रियासत थी जिसका कोई भी प्रतिनिधि अंत तक संविधान सभा में विधिक रूप से सम्मिलित नहीं हुआ।
- **क्रमिक प्रविष्टि प्रतिरूप:** 28 अप्रैल 1947 को संविधान सभा के तीसरे सत्र के दौरान पहली बार 6 देशी रियासतों (बड़ौदा, बीकानेर, जयपुर, पटियाला, रीवा और जोधपुर) के प्रतिनिधियों ने अपने विधिक कपाट खोलते हुए सभा में अपनी वैधानिक प्रविष्टि दर्ज की। इसके पश्चात 3 जून 1947 की माउंटबेटन योजना (विभाजन विलेख) के प्रख्यापन के बाद शेष अधिकांश रियासतों के शासकों ने अपने मनोनीत प्रतिनिधियों को सभा में भेजना विधिक रूप से अनिवार्य कर दिया।

8. विभाजन का प्रादेशिक प्रभाव और सांख्यिकीय पुनर्गठन (3 जून 1947)

3 जून 1947 को तत्कालीन गवर्नर-जनरल लॉर्ड माउंटबेटन द्वारा भारत के विभाजन और दो संप्रभु डोमिनियनों (भारत व पाकिस्तान) के विनिर्माण की विधिक योजना प्रस्तुत की गई। इस भू-राजनीतिक विभाजन ने संविधान सभा के प्रादेशिक और सांख्यिकीय विन्यास को पूरी तरह विस्थापित कर दिया:

8.1 सीटों का सांख्यिकीय हास

पाकिस्तान के क्षेत्राधिकार में जाने वाले प्रांतों (पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, सिंध, उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत, ब्रिटिश बलूचिस्तान और असम का सिलहट जिला) के सदस्य भारतीय संविधान सभा से विधिक रूप से अलग हो गए। इसके परिणामस्वरूप **संविधान सभा की कुल सदस्य संख्या 389 से घटकर मात्र 299 रह गई।**

8.2 पुनर्गठित सीटों का विनियामक विभाजन

31 दिसंबर 1947 को भारतीय संविधान सभा के इस पुनर्गठित स्वरूप में 299 सीटों का आंतरिक विन्यास निम्नलिखित वैधानिक मापदंडों के अनुसार सांख्यिकीय रूप से स्थिर हुआ:

- **भारतीय प्रांत (British Provinces):** इनकी सीटें 296 से घटकर **229** रह गईं।
- **देशी रियासतें (Princely States):** इनकी सीटें 93 से घटकर **70** रह गईं।

सारणी 8.3: विभाजन के पश्चात प्रांतीय सीटों का अद्यतन सांख्यिकीय विन्यास (शीर्ष प्रांत)

ब्रिटिश भारत के पुनर्गठित प्रांत का नाम	विभाजन के पश्चात अद्यतन आवंटित सीटें	जनसांख्यिकीय/विधायी स्थिति
मद्रास प्रांत	49 सीटें	पुनर्गठित भारतीय प्रांतों में सर्वोच्च प्रतिनिधित्व
संयुक्त प्रांत (United Provinces - UP)	55 सीटें	विस्तृत भौगोलिक अवस्थिति (द्वितीय शीर्ष)
पश्चिम बंगाल प्रांत	19 सीटें	विभाजन के बाद कटी हुई सीमांत प्रादेशिक मेखला
बम्बई प्रेसिडेंसी	21 सीटें	पश्चिमी तटीय औद्योगिक और वाणिज्यिक केंद्र
बिहार प्रांत	36 सीटें	गंगा के मैदानी जलोढ़ अंचल की सघन जनसांख्यिकी

9. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Indirect Election):** वह विधायी निर्वाचन प्रणाली जिसके अंतर्गत आम जनता सीधे अपने प्रतिनिधियों को मत नहीं देती, बल्कि जनता द्वारा चुने गए विधायक (प्रांतीय सदस्य) उच्च सदन या विशिष्ट सभा के सदस्यों को विधिक रूप से चुनते हैं।
- **एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote):** अनुपातिक प्रतिनिधित्व की वह वैज्ञानिक मतदान विधा जिसमें मतदाता प्रत्याशियों को अपनी वरीयता (Preference 1, 2, 3) के अनुसार मत अंकित करता है और मतों का स्थानांतरण कोलाइडल गणितीय मापदंडों पर होता है।
- **मनोनयन विलेख (Nomination Deed):** किसी शासक या प्राधिकारी द्वारा बिना चुनावी प्रक्रिया के सीधे किसी व्यक्ति को विधायी सदन का सदस्य नियुक्त करने का वैधानिक विशेषाधिकार, जैसा रियासतों के राजाओं को प्राप्त था।

- **वार्ताकार समिति (Negotiation Committee):** संविधान सभा और देशी रियासतों के मध्य सीटों के आनुपातिक मिलान और विधिक प्रविष्टि के तौर-तरीके तय करने के लिए निर्मित विशेष प्रशासनिक विंग।
- **मेटासोमैटिक प्रादेशिक विस्थापन:** विभाजन विलेख (3 जून 1947) के प्रभाव से प्रांतीय विधायी क्षेत्रों के टूटने और सीटों के 389 से 299 होने का भू-वैधानिक सांख्यिकीय प्रक्रम।

10. चुनाव प्रतिरूप की अंतर्निहित वैधानिक कमियां और रक्षात्मक संवीक्षा

भारतीय संविधान सभा के इस विशिष्ट गठन और चुनाव प्रतिरूप के संबंध में समकालीन और आधुनिक विनियामक विचारकों द्वारा कई गंभीर विधिक सीमाएं और आलोचनात्मक सूचकांक प्रस्तुत किए गए हैं, जिनका प्रशासनिक और अकादमिक विश्लेषण अनिवार्य है:

10.1 वयस्क मताधिकार का पूर्ण अभाव (नॉन-डेमोक्रेटिक ढांचा)

- ब्रिटिश शासनकाल के दौरान वर्ष 1935 के अधिनियम के तहत प्रांतीय विधानसभाओं का चुनाव अत्यधिक संकुचित संपत्ति, कर और शैक्षणिक योग्यताओं के आधार पर हुआ था, जिसमें देश की मात्र **10 प्रतिशत जनसांख्यिकी** को ही मतदान का विधिक अधिकार प्राप्त था। चूंकि संविधान सभा का चुनाव इन्हीं सीमित निर्वाचित विधायकों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया गया था, इसलिए विधिक आलोचकों (जैसे विंस्टन चर्चिल और विस्काउंट साइमन) ने इसे संपूर्ण भारत की आम जनसांख्यिकी का वास्तविक संप्रभु प्रतिनिधित्व मानने से इनकार कर दिया था।

10.2 संप्रभुता का औपनिवेशिक विरोधाभास

- प्रारंभ में संविधान सभा एक संप्रभु संस्था नहीं थी, क्योंकि इसका गठन पूरी तरह एक विदेशी सरकार के 'कैबिनेट मिशन प्रस्ताव' के विधिक वैधानिक दायरे के भीतर किया गया था। इसकी बैठकें ब्रिटिश सरकार की पूर्व अनुमति और प्रशासनिक संस्तुति पर निर्भर थीं। यह विसंगति आगे चलकर **भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 की धारा 6** के प्रवर्तन द्वारा पूरी तरह दूर की गई, जिसने इस सभा को संप्रभु घोषित कर ब्रिटिश संसद के किसी भी कानून को बदलने या निरस्त करने का पूर्ण वैधानिक अधिकार सौंप दिया।

10.3 दलीय और जातीय संकेंद्रीकरण का विरोधाभास

- विख्यात ब्रिटिश संविधान विशेषज्ञ **ग्रैनविले ऑस्टिन** (Granville Austin) ने अपनी पुस्तक 'द इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन: कॉर्नरस्टोन ऑफ ए नेशन' में इसके दलीय संकेंद्रीकरण की तीक्ष्ण आलोचना करते हुए लिखा था कि: **"संविधान सभा अनिवार्य रूप से एकदलीय देश का एकसदनीय निकाय थी। वह सभा ही कांग्रेस थी और कांग्रेस ही भारत था।"** इसके अतिरिक्त विस्काउंट साइमन ने इसे **"हिंदुओं की एक संस्था"** कहकर संबोधित किया था, जो इसके भीतर कांग्रेस के 208 सीटों के सांख्यिकीय भार को परिलक्षित करता है।

11. वर्ष 1935 के प्रांतों बनाम 1946 की संविधान सभा का समेकित तुलनात्मक विन्यास

सारणी 8.4: प्रांतीय विधायी संस्तरों और संविधान सभा के चुनाव प्रतिरूपों का अंतर्संबंध

विनियामक आयाम	वर्ष 1935 के अधिनियम के तहत प्रांतीय विधानसभाएं	वर्ष 1946 के प्रस्तावों के तहत संविधान सभा
मताधिकार का विन्यास	सीमित प्रत्यक्ष मताधिकार (कर, शिक्षा व संपत्ति आर्डर पर आधारित 10% आबादी हेतु देय)।	प्रांतीय विधायकों द्वारा पूर्णतः अप्रत्यक्ष विधायी निर्वाचन प्रतिरूप ।
सांप्रदायिक पृथक्करण	मुस्लिम, सिख, आंग्ल-भारतीय, महिला व अछूतों हेतु पृथक चुनावी मेखलाएं सक्रिय थीं।	त्रिविध सामान्यीकरण: सामान्य (214), मुस्लिम (78) तथा सिख (4) वर्ग की सीटें।

देशी रियासतों की स्थिति	प्रांतीय परिषदों में रियासतों का कोई सीधा प्रशासनिक हस्तक्षेप कानूनन नहीं था।	रियासतों के राजाओं को 93 प्रतिनिधियों के सीधे मनोनयन का वैधानिक विशेषाधिकार ।
संवैधानिक संप्रभुता	पूरी तरह ब्रिटिश गवर्नर के वीटो और प्रशासनिक कमान के नियंत्रण में पंगु अवस्थिति।	स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के पश्चात पूर्ण संप्रभु संविधान विनिर्माता निकाय ।

12. चुनाव प्रतिरूप का आधुनिक संवैधानिक और प्रशासनिक प्रभाव

संविधान सभा के इस आनुपातिक गठन और प्रांतीय विधानसभाओं द्वारा किए गए एकल संक्रमणीय मत हस्तांतरण प्रक्रम ने आधुनिक भारत के विधायी भूगोल को दूरगामी रूप से स्थायित्व प्रदान किया:

- **राज्यसभा चुनाव प्रणाली का ब्लूप्रिंट (अनुच्छेद 80):** हमारे वर्तमान संविधान के **अनुच्छेद 80** के तहत संसद के उच्च सदन (राज्यसभा) के सदस्यों के चुनाव की जो विधा प्रयुक्त की जाती है—अर्थात् राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा चुनाव—वह पूरी तरह वर्ष 1946 की इसी संविधान सभा के चुनाव प्रतिरूप की हूबहू विधिक और संस्थागत नकल है।
- **बहुसंस्कृतिवाद और लोक कल्याणकारी राज्य का जन्म:** यद्यपि चुनाव अप्रत्यक्ष थे, परंतु इसके भीतर कांग्रेस कमान (महात्मा गांधी के विज़न के अनुसार, जिन्होंने स्वयं चुनाव नहीं लड़ा) द्वारा देश के सर्वश्रेष्ठ विधिक और अकादमिक मनीषियों (यथा- डॉ. बी. आर. अंबेडकर, सर बी. एन. राव, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, के. एम. मुंशी) को बिना दलीय पूर्वाग्रह के शामिल करना यह सिद्ध करता है कि इस सभा का चरित्र औपनिवेशिक संकीर्णता से मुक्त होकर एक समतावादी, लोक कल्याणकारी और अभेद्य विधिक भारत के विनिर्माण हेतु पूरी तरह प्रतिबद्ध था।

भारतीय संविधान सभा का प्रांतीय विधानसभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर गठन, 389 से 299 सीटों का सांख्यिकीय प्रादेशिक विस्थापन और आंशिक निर्वाचित व आंशिक मनोनीत स्वरूप औपनिवेशिक संक्रमण काल के दौरान संप्रभुता के हस्तांतरण की एक अत्यंत परिपक्व और जटिल विधिक इंजीनियरिंग थी। इसके वयस्क मताधिकार से वंचित रहने और दलीय संकेंद्रीकरण के भार ने भले ही समकालीन आलोचकों को विचलित किया हो, परंतु इसके द्वारा विनिर्मित त्रि-स्तरीय समुदायों के संतुलन, 15 महिला सदस्यों के आनुपातिक समावेशन और एकल संक्रमणीय मत के वैज्ञानिक सिद्धांतों ने स्वतंत्र भारत के प्रशासनिक भूगोल और विधायी संघवाद के ऊर्ध्वाधर ऊँचे ढांचे को एक अत्यधिक सुदृढ़, परिपक्व और विधिक वैधानिक आधारशिला प्रदान की।

अध्याय 9: संविधान सभा की कार्यप्रणाली: उद्देश्य प्रस्ताव, अंतरिम सरकार और विधिक गतिकी

1. संविधान सभा की प्रारंभिक कार्यप्रणाली एवं ऐतिहासिक बैठकें

कैबिनेट मिशन योजना 1946 के विनिर्देशों के अनुसार जुलाई-अगस्त 1946 में निर्वाचित होने के पश्चात भारतीय संविधान सभा की ऐतिहासिक कार्यप्रणाली का औपचारिक सूत्रपात हुआ। संसद भवन के केंद्रीय कक्ष (संविधान हॉल, नई दिल्ली) में **9 दिसंबर 1946** को प्रातः 11:00 बजे संविधान सभा की प्रथम बैठक विधिक रूप से आयोजित की गई।

1.1 सच्चिदानंद सिन्हा का अस्थायी मनोनयन एवं फ्रांसीसी परंपरा

- **अस्थायी अध्यक्ष पद विन्यास:** संविधान सभा की प्रथम बैठक में कुल **211 सदस्यों** ने अपनी वैधानिक उपस्थिति दर्ज की। मुस्लिम लीग ने इस बैठक का पूर्ण विधिक बहिष्कार किया था। इस प्रथम ऐतिहासिक सत्र के सुचारू संचालन हेतु सभा के वरिष्ठतम सदस्य **डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा** को सर्वसम्मति से सभा का अस्थायी अध्यक्ष (Pro-tem Chairman) मनोनीत किया गया।
- **वैधानिक मूलाधार:** यह विन्यास पूरी तरह से **फ्रांसीसी प्रणालियों और परंपराओं** पर आधारित था, जिसके तहत विधायी निकायों के गठन के समय सदन के सबसे आयुवृद्ध सदस्य को अस्थायी रूप से कमान सौंपी जाती है। जे. बी. कृपलानी ने डॉ. सिन्हा को अध्यक्ष पीठ तक विधिक रूप से आमंत्रित किया था।

1.2 स्थायी अध्यक्ष एवं विनियामक पदों का वैधानिक गठन

- **डॉ. राजेंद्र प्रसाद का सर्वसम्मति निर्वाचन:** दो दिन के पश्चात, **11 दिसंबर 1946** को आयोजित बैठक में **डॉ. राजेंद्र प्रसाद** को सर्वसम्मति से भारतीय संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष (President) विधिक रूप से चुन लिया गया। उनके नाम का प्रस्ताव जे. बी. कृपलानी द्वारा प्रस्तुत किया गया था।
- **द्वि-स्तरीय उपाध्यक्ष विन्यास:** सभा के कार्यों को सुव्यवस्थित करने के लिए दो उपाध्यक्षों (Vice-Presidents) का विन्यास किया गया: **एच. सी. मुखर्जी** (हरेंद्र कुमार मुखर्जी) तथा **वी. टी. कृष्णामाचारी** (देशी रियासतों के प्रतिनिधि कड़ी)।
- **संवैधानिक विधिक सलाहकार:** **सर बेनेगल नरसिंह राव (बी. एन. राव)** को संविधान सभा का आधिकारिक विधिक/संवैधानिक सलाहकार नियुक्त किया गया, जिन्होंने अंतरराष्ट्रीय विधिक संहिताओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर संविधान का प्राथमिक मसौदा तैयार किया।

2. उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution): दार्शनिक एवं वैधानिक मूलाधार

भारतीय संविधान के दार्शनिक विन्यास, शासन प्रणाली के मूल चरित्र और सामाजिक-आर्थिक न्याय के विनिर्देशों को रेखांकित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण विलेख '**उद्देश्य प्रस्ताव**' था, जिसे **13 दिसंबर 1946** को पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा संविधान सभा के पटल पर विधिक रूप से प्रस्तुत किया गया।

2.1 उद्देश्य प्रस्ताव के सर्वप्रमुख विधिक प्रावधान

इस प्रस्ताव में 8 मुख्य विधिक स्तंभ शामिल थे, जिन्होंने आगे चलकर हमारे संविधान की **प्रस्तावना** (Preamble) और मौलिक अधिकारों की वैधानिक रीढ़ को निर्मित किया:

- **स्वतंत्र संप्रभु गणराज्य:** भारत एक पूर्णतः स्वतंत्र, संप्रभु और लोकतांत्रिक गणराज्य (Independent, Sovereign Republic) होगा जो स्वयं अपना भविष्यलक्षी संविधान विनिर्मित करेगा।
- **संघीय ऊर्ध्वाधर ढांचा:** ब्रिटिश भारत के प्रांत, देशी रियासतें और अन्य क्षेत्र मिलकर एक भारतीय संघ (Union of India) का विनिर्माण करेंगे, जहाँ इकाइयों को स्वायत्तता प्राप्त होगी।
- **जनता की विधिक संप्रभुता:** संप्रभु और स्वतंत्र भारत की संपूर्ण शक्ति, सत्ता और प्रशासनिक प्राधिकार का अंतिम विधिक स्रोत पूरी तरह **भारत की जनता** में अंतर्निहित होगा।
- **त्रि-स्तरीय सामाजिक-आर्थिक न्याय कड़ी:** भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; अवसर और विधिक कानून के समक्ष समता; तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना और संगठन निर्माण की पूर्ण स्वतंत्रता विधिक रूप से सुनिश्चित की जाएगी।
- **अल्पसंख्यक और वंचित वर्गों का संरक्षण:** अल्पसंख्यकों, पिछड़े और जनजातीय क्षेत्रों तथा शोषित व अपवंचित वर्गों (SC/ST) के अधिकारों की रक्षा के लिए विनिर्दिष्ट वैधानिक सुरक्षा कवच प्रदान किए जाएंगे।

2.2 सर्वसम्मति विधिक स्वीकृति

प्रारंभ में डॉ. बी. आर. अंबेडकर और एम. आर. जयकर ने यह विनियामक तर्क प्रस्तुत किया कि जब तक मुस्लिम लीग और देशी रियासतें सभा में सम्मिलित नहीं हो जातीं, तब तक इस दार्शनिक प्रस्ताव को पारित करना विधिक रूप से जल्दबाजी होगी। इसी विधिक गतिकी के कारण आंशिक विलंब के पश्चात **22 जनवरी 1947** को संविधान सभा ने सर्वसम्मति से इस उद्देश्य प्रस्ताव को विधिक रूप से स्वीकार कर लिया।

3. अंतरिम सरकार (Interim Government) का गठन एवं बजटीय गतिरोध

कैबिनेट मिशन योजना के विनिर्देशों के अनुसार देश के तात्कालिक प्रशासनिक और बजटीय संचालन हेतु **2 सितंबर 1946** को भारत की पहली आधिकारिक 'अंतरिम सरकार' का गठन किया गया था। इस सरकार की कार्यप्रणाली कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के संकर संस्तर के रूप में गतिक थी।

3.1 संस्थागत और प्रशासनिक विन्यास

- **वायसराय की परिषद का स्वरूप:** अंतरिम सरकार विधिक रूप से गवर्नर-जनरल की विस्तारित कार्यकारी परिषद ही थी। इसके विधिक अध्यक्ष स्वयं वायसराय (लॉर्ड वेवेल) थे। **पंडित जवाहरलाल नेहरू को इस परिषद का उप-उपाध्यक्ष (Vice-President) नियुक्त किया गया था** तथा उन्हें विदेश और राष्ट्रमंडल मामलों का कार्यकारी कपाट सौंपा गया था।
- **मुस्लिम लीग की रणनीतिक प्रविष्टि:** प्रारंभ में लीग ने इसका पूर्ण बहिष्कार किया, परंतु अंतरिम सरकार को भीतर से पंगु बनाने और पाकिस्तान की मांग को उग्र करने की रणनीतिक विधा के साथ **26 अक्टूबर 1946** को लीग के 5 प्रतिनिधि अंतरिम सरकार में विधिक रूप से शामिल हो गए।

3.2 लियाकत अली खान का वित्त कपाट और बजटीय गतिरोध

- **वित्तीय गतिरोध का प्रतिरूप:** मुस्लिम लीग के नेता **लियाकत अली खान** को अंतरिम सरकार में 'वित्त विभाग' (Finance) का विधिक प्रभार सौंपा गया। उन्होंने इस पद का उपयोग कांग्रेस कमान के प्रशासनिक और विकासात्मक निर्णयों को रोकने के विनियामक अस्त्र के रूप में किया।
- **उद्योगपति विरोधी कर नीति:** फरवरी 1947 में वित्त मंत्री के रूप में लियाकत अली खान ने जो वार्षिक बजट प्रस्तुत किया, उसमें राष्ट्रवादी व्यापारिक घरानों और उद्योगपतियों पर अत्यधिक दंडात्मक कर लगा दिए गए, जिससे व्यापारिक भूगोल में भारी ह्रास दर्ज हुआ। गृह मंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल और उद्योग मंत्री डॉ. जॉन मथाई की प्रत्येक लोक कल्याणकारी योजना की फाइलों को वित्त विभाग तकनीकी संवीक्षा द्वारा अटका देता था, जिससे कार्यपालिका के भीतर चरम गतिरोध उत्पन्न हुआ। इसी बजटीय पंगुता ने कांग्रेस कमान को विभाजन विलेख स्वीकार करने हेतु विधिक रूप से विवश किया।

सारणी 9.1: अंतरिम सरकार 1946 का विभागवार प्रशासनिक विन्यास

मंत्री का प्रामाणिक नाम	संबद्ध राजनीतिक दल कड़ी	आवंटित विधिक/प्रशासनिक विभाग	आधुनिक संवैधानिक उत्तराधिकारी पद
पंडित जवाहरलाल नेहरू	भारतीय कांग्रेस राष्ट्रीय	कार्यकारी परिषद के उपाध्यक्ष, विदेश, राष्ट्रमंडल	प्रधानमंत्री - अनुच्छेद 74
सरदार वल्लभभाई पटेल	भारतीय कांग्रेस राष्ट्रीय	गृह, सूचना एवं प्रसारण, देशी रियासत विभाग	गृह मंत्री / उप-प्रधानमंत्री
लियाकत अली खान	मुस्लिम लीग	वित्त विभाग (Finance)	वित्त मंत्री - अनुच्छेद 280
डॉ. जॉन मथाई	भारतीय कांग्रेस राष्ट्रीय	उद्योग एवं नागरिक संभरण	उद्योग एवं वाणिज्य मंत्रालय
बलदेव सिंह	सिख प्रतिनिधि (कांग्रेस सरिखण)	रक्षा विभाग (Defence)	रक्षा मंत्री

सी. राजगोपालाचारी	भारतीय कांग्रेस	राष्ट्रीय	शिक्षा एवं कला	शिक्षा मंत्रालय
आसफ अली	भारतीय कांग्रेस	राष्ट्रीय	रेलवे एवं परिवहन	रेल मंत्रालय
डॉ. राजेंद्र प्रसाद	भारतीय कांग्रेस	राष्ट्रीय	खाद्य एवं कृषि	खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति मंत्रालय
जोगेंद्र नाथ मंडल	मुस्लिम (अनुसूचित कोटा)	लीग जाति	विधि विभाग (Law)	कानून एवं न्याय मंत्रालय

4. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 द्वारा जनित विधिक गतिकी (Legal Dynamics)

3 जून 1947 की माउंटबेटन योजना (विभाजन विलेख) के वैधानिक प्रवर्तन के पश्चात ब्रिटिश संसद ने 'भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947' (Indian Independence Act 1947) पारित किया। इस अधिनियम ने भारतीय संविधान सभा के चरित्र, शक्तियों और क्षेत्राधिकार में तीन सर्वप्रमुख विवर्तनिक और क्रांतिकारी विस्थापन किए:

4.1 पूर्ण संप्रभुता का विधिक उदय (Sovereign Status)

- **औपनिवेशिक बंधनों से मुक्ति:** अधिनियम की धारा 6 के तहत **संविधान सभा को एक पूर्णतः संप्रभु संस्था (Sovereign Body) घोषित कर दिया गया।** अब यह सभा कैबिनेट मिशन योजना के संकीर्ण विधिक दायरों और सीमाओं से पूरी तरह विमुक्त हो गई।
- **ब्रिटिश कानूनों को निरस्त करने की शक्ति:** सभा को यह वैधानिक अधिकार प्राप्त हुआ कि वह ब्रिटिश संसद द्वारा भारत के संबंध में विनिर्मित किसी भी पूर्ववर्ती कानून, यहाँ तक कि स्वयं 1947 के स्वतंत्रता अधिनियम को भी, अपनी मर्जी से संशोधित या पूरी तरह निरस्त (Repeal) कर सकती थी।

4.2 संविधान सभा की दोहरी विधायी भूमिका (Dual Role)

इस अधिनियम द्वारा पहली बार संविधान सभा को एक 'दोहरी संस्था' के रूप में प्रस्थापित किया गया, जिसके प्रशासनिक कार्य पूर्णतः भिन्न थे। यह एक साथ **संविधान विनिर्माता निकाय** भी थी और स्वतंत्र भारत की **अंतरिम संसद (Constituent Legislature)** भी थी। इन दोनों कार्यों का संचालन पृथक-पृथक दिनों में अलग-अलग अध्यक्षों की कमान में किया जाता था:

- **संविधान निर्माण के दिनों में:** जब सभा संविधान विलेख के निर्माण हेतु बैठती थी, तो इसकी विधिक अध्यक्षता **डॉ. राजेंद्र प्रसाद** द्वारा की जाती थी।
- **विधायी/संसद के दिनों में:** जब यह देश के लिए सामान्य कानूनों का निर्माण करने हेतु अंतरिम व्यवस्थापिका के रूप में बैठती थी, तो इसकी अध्यक्षता **जी. वी. मावलंकर** (गणेश वासुदेव मावलंकर) करते थे। इस प्रकार **जी. वी. मावलंकर स्वतंत्र भारत की प्रथम विधायी संसद के पहले विख्यात स्पीकर (Speaker) बने।** यह दोहरी भूमिका 26 नवंबर 1949 तक निरंतर गतिक बनी रही।

4.3 मुस्लिम लीग का निष्कासन और सांख्यिकीय पुनर्गठन

- पाकिस्तान के क्षेत्राधिकार में जाने वाले प्रांतों के प्रतिनिधियों के हट जाने के कारण संविधान सभा की कुल सदस्य संख्या **389 से घटकर 299 रह गई।** प्रांतीय सीटों का आयतन 229 तथा देशी रियासतों

का विन्यास 70 सीटों पर आकर स्थिर हुआ, जिसने सस्य और बजटीय गणनाओं के प्रादेशिक भूगोल को प्रभावित किया।

5. संविधान सभा द्वारा किए गए अन्य विनिर्दिष्ट वैधानिक कार्य

संविधान के विनिर्माण के अतिरिक्त, इस संप्रभु सभा ने राष्ट्र के संस्थागत संरक्षण को स्थायित्व देने के लिए कई महत्वपूर्ण नीतिगत और विधिक निर्णय सांख्यिकीय रूप से दर्ज किए:

- **राष्ट्रमंडल की सदस्यता का विलेख:** मई 1949 में संविधान सभा ने राष्ट्रमंडल (Commonwealth) में भारत की सदस्यता का विधिक सत्यापन (Ratification) किया। नेहरू ने यह सुस्पष्ट किया कि यह सदस्यता भारत की बाहरी संप्रभुता पर कोई विधिक चोट नहीं है।
- **राष्ट्रीय ध्वज का वैधानिक अंगीकरण:** 22 जुलाई 1947 को आयोजित सत्र में तिरंगे को भारत के आधिकारिक 'राष्ट्रीय ध्वज' के रूप में विधिक संस्तुति प्रदान की गई।
- **राष्ट्रीय गान एवं राष्ट्रीय गीत:** 24 जनवरी 1950 को आयोजित संविधान सभा की अंतिम बैठक में 'जन गण मन' को राष्ट्रीय गान तथा 'वंदे मातरम' को राष्ट्रीय गीत के रूप में विधिक रूप से अंगीकार किया गया।
- **प्रथम राष्ट्रपति का विधिक चयन:** 24 जनवरी 1950 को ही सर्वसम्मति से डॉ. राजेंद्र प्रसाद को स्वतंत्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति विधिक रूप से चुन लिया गया, जिससे भारत वास्तविक अर्थों में एक संप्रभु गणराज्य बना।

6. समेकित तुलनात्मक तालिका: संविधान सभा की ऐतिहासिक बैठकों का विन्यास

ऐतिहासिक बैठक का क्रम	वास्तविक विधिक तिथि कूट	प्राथमिक विनियामक/प्रशासनिक अध्यक्ष	सर्वप्रमुख विधिक / दार्शनिक कार्य संपादन	विधायी/संवैधानिक विशिष्टता
प्रथम ऐतिहासिक बैठक	9 दिसंबर 1946	डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा (अस्थायी)	फ्रांस की तर्ज पर वरिष्ठता के आधार पर अध्यक्ष मनोनयन; 211 सदस्यों की उपस्थिति।	मुस्लिम लीग द्वारा पूर्ण विधिक बहिष्कार; संघवाद पर प्रारंभिक शून्यता।
स्थायी संस्तर गठन	11 दिसंबर 1946	डॉ. राजेंद्र प्रसाद (स्थायी अध्यक्ष)	एच. सी. मुखर्जी व वी. टी. कृष्णामाचारी उपाध्यक्ष नियुक्त; बी. एन. राव विधिक सलाहकार।	सभा को एक स्थायी और सुव्यवस्थित संस्थागत ढांचा प्राप्त हुआ।
दार्शनिक मूलाधार प्रस्तुति	13 दिसंबर 1946	डॉ. राजेंद्र प्रसाद	पंडित नेहरू द्वारा 'उद्देश्य प्रस्ताव' (Objective Resolution) पटल पर प्रस्तुत।	संविधान की प्रस्तावना और मौलिक अधिकारों के आनुवंशिक बीज बोए गए।

उद्देश्य प्रस्ताव की स्वीकृति	22 जनवरी 1947	डॉ. राजेंद्र प्रसाद	संपूर्ण उद्देश्य प्रस्ताव को सभा द्वारा सर्वसम्मति से विधिक रूप से पारित किया गया।	लीग की अनुपस्थिति के बावजूद दार्शनिक विन्यास को वैधानिक स्थायित्व।
अंतिम आधिकारिक बैठक	24 जनवरी 1950	डॉ. राजेंद्र प्रसाद	राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय गीत का अंगीकरण; डॉ. राजेंद्र प्रसाद देश के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित।	संविधान विलेख पर 284 सदस्यों द्वारा विधिक हस्ताक्षर; सभा का अंतरिम संसद में रूपांतरण।

7. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **अस्थायी अध्यक्ष (Pro-tem Chairman):** सदन के नए स्थायी अध्यक्ष के विधिक निर्वाचन तक विधायी बैठकों और सदस्यों के शपथ ग्रहण प्रक्रम का संचालन करने वाला वरिष्ठतम मनोनीत प्राधिकारी।
- **उद्देश्य प्रस्ताव (Objective Resolution):** स्वतंत्र भारत के भावी संविधान के मूल चरित्र, संप्रभुता के स्रोत और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को परिलक्षित करने वाला ऐतिहासिक मार्गदर्शक विलेख।
- **अंतरिम संसद (Constituent Legislature):** स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के प्रभाव से संविधान सभा को प्राप्त वह विधायी दर्जा जिसके तहत वह सामान्य देश काल के कानूनों के विनिर्माण हेतु संप्रभु संसद के रूप में कार्य करती थी।
- **सारवान विधिक प्रश्न:** संविधान या औपनिवेशिक अधिनियमों की धाराओं की वह व्याख्या जिस पर संपूर्ण प्रशासनिक ढांचे का संतुलन टिका होता है।
- **बजटीय पंगुता (Financial Gridlock):** अंतरिम सरकार में वित्त विभाग पर मुस्लिम लीग के नियंत्रण के कारण उत्पन्न वह गतिरोध जिसने प्रशासनिक फाइलों और विकासात्मक आवंटन को पूरी तरह रोक दिया था।
- **मेटासोमैटिक विनियामक रूपांतरण:** एक औपनिवेशिक विधायी निकाय का भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के प्रभाव से शत-प्रतिशत संप्रभु और कानूनन स्वतंत्र अंतरिम संसद में बदलने का प्रक्रम।

8. संविधान सभा की कार्यप्रणाली के समक्ष आधुनिक भू-राजनीतिक एवं प्रशासनिक चुनौतियां

संविधान के विनिर्माण की यह संपूर्ण विकास यात्रा अत्यधिक संवेदी और विषम परिस्थितियों के मध्य गतिक थी, जिसके समक्ष निम्नलिखित विनियामक और पारि-आकृतिक चुनौतियां विद्यमान थीं:

8.1 संप्रभुता का अभाव और 'क्रिटिक' इंडेक्स (Cynical Index)

- प्रारंभिक दौर में विधिक आलोचकों (यथा- विंस्टन चर्चिल) का यह तीक्ष्ण मत था कि यह सभा पूरी तरह ब्रिटिश कैबिनेट मिशन की बैसाखियों पर टिकी है। चर्चिल ने मुस्लिम लीग के बहिष्कार पर कटाक्ष करते हुए कहा था कि: "यह एक ऐसा विवाह है जिसकी दुल्हन (मु Muslim League) ही गायब है।" इस औपनिवेशिक आक्षेप का शमन पंडित नेहरू ने अपने वक्तव्यों द्वारा किया, जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि सभा अपनी शक्ति ब्रिटिश सरकार से नहीं, बल्कि भारत की जनता के सामूहिक संकल्प से प्राप्त कर रही है।

8.2 डॉ. अंबेडकर का प्रादेशिक विधायी निर्वाचन संकट

- **भू-राजनीतिक विस्थापन:** आधुनिक भारत के संविधान के मुख्य शिल्पकार डॉ. बी. आर. अंबेडकर का प्रारंभिक निर्वाचन बंगाल प्रांत के 'पूर्वी बंगाल' क्षेत्र से हुआ था। परंतु 3 जून 1947 की विभाजन योजना के तहत यह संपूर्ण पूर्वी बंगाल का भूखंड पाकिस्तान (पूर्वी पाकिस्तान) का हिस्सा बन गया, जिसके कारण डॉ. अंबेडकर की संविधान सभा की सदस्यता विधिक रूप से स्वतः ही समाप्त हो गई।

- **प्रशासनिक सुधारात्मक कड़ि:** भारत के संविधान निर्माण में उनके विधिक ज्ञान की अपरिहार्यता को देखते हुए संवैधानिक सलाहकार बी. एन. राव की संस्तुति पर अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने बम्बई के प्रधानमंत्री बी. जी. खेर को पत्र लिखा। इसके तहत बम्बई प्रेसिडेंसी की **पुणे सीट से एम. आर. जयकर (M. R. Jayakar)** से **विधिक त्यागपत्र दिलवाया गया** और उस रिक्त सीट पर उपचुनाव कराकर डॉ. अंबेडकर को दोबारा बम्बई से संविधान सभा का सदस्य विधिक रूप से मनोनीत/निर्वाचित कराया गया। यह भारतीय संवैधानिक भूगोल की एक अत्यंत रणनीतिक और रक्षात्मक विधिक गतिकी थी।

9. अंतरिम सरकार की कार्यप्रणाली का आधुनिक वित्तीय एवं प्रशासनिक भूगोल पर प्रभाव

अंतरिम सरकार के भीतर उपजे तीक्ष्ण बजटीय गतिरोधों और शक्तियों के टकराव ने स्वतंत्र भारत के भावी नीति निर्माताओं को दूरगामी प्रशासनिक सबक प्रदान किए:

A. सुदृढ़ और केंद्रीकृत वित्तीय संघवाद का विनिर्माण (अनुच्छेद 280):

- अंतरिम सरकार में लियाकत अली खान द्वारा वित्त विभाग के राजनीतिक दुरुपयोग (बजटीय पंगुता) से सीख लेकर संविधान निर्माताओं ने यह नीतिगत निर्णय लिया कि स्वतंत्र भारत में बजट निर्माण और वित्तीय संसाधनों का आवंटन किसी एक राजनैतिक दल के पूर्वाग्रह पर आश्रित नहीं होना चाहिए। यही कारण है कि हमारे वर्तमान संविधान के **अनुच्छेद 280 के तहत एक स्वायत्त 'वित्त आयोग' (Finance Commission)** के गठन का विधिक प्रावधान किया गया, जो पूरी तरह निष्पक्ष और वैज्ञानिक मापदंडों के आधार पर केंद्र और राज्यों के मध्य राजस्व के आनुपातिक वितरण को विधिक स्थायित्व प्रदान करता है।

B. एकीकृत और उत्तरदायी मंत्रिमंडलीय प्रणाली (अनुच्छेद 74 व 75):

- अंतरिम सरकार में सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility) का पूर्ण अभाव था क्योंकि लीग के मंत्री अपनी कमान सीधे जिन्ना से प्राप्त करते थे और नेहरू के नेतृत्व को खारिज करते थे। इस प्रशासनिक विसंगति के स्थायी शमन हेतु आधुनिक संविधान के **अनुच्छेद 75(3)** में यह स्पष्ट रूप से प्रस्थापित किया गया कि मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से केवल **लोकसभा** के प्रति जवाबदेह होगी; अविश्वास प्रस्ताव द्वारा पूरी सरकार को एक साथ हटाया जाना विधिक रूप से अनिवार्य किया गया ताकि कार्यपालिका के भीतर किसी भी प्रकार के आंतरिक विखंडन को रोका जा सके।

10. सतत प्रादेशिक संवैधानिक नियोजन एवं भावी विज़न

संविधान सभा की कार्यप्रणाली, उद्देश्य प्रस्ताव के दार्शनिक स्तंभ और स्वतंत्रता अधिनियम द्वारा जनित संप्रभुता का वैज्ञानिक विश्लेषण यह प्रामाणिक रूप से प्रमाणित करता है कि भारत का संविधान किसी बाहरी सत्ता द्वारा थोपा गया विलेख नहीं है, बल्कि यह दो वर्ष, ग्यारह माह और अठारह दिन के सघन वैधानिक विमर्श से निकला एक संप्रभु राष्ट्रीय चार्टर है।

- **उद्देश्य प्रस्ताव से प्रस्तावना की विकास यात्रा:** 22 जनवरी 1947 को सर्वसम्मति से पारित उद्देश्य प्रस्ताव के दार्शनिक तत्वों को ही लघु संशोधनों के साथ 26 नवंबर 1949 को अंगीकृत किए गए संविधान की **प्रस्तावना (Preamble)** के रूप में विस्थापित किया गया। इसके संप्रभुता, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता और नागरिकों के त्रि-स्तरीय सामाजिक-आर्थिक न्याय के मापदंड आज भी देश के योजनाबद्ध सतत प्रादेशिक विकास, बजटीय संसाधन आवंटन और प्रशासनिक लोक कल्याण की वैधानिक आधारशिला प्रस्तुत करते हैं।

wincompete

अध्याय 10: संविधान सभा की प्रमुख समितियां: प्रारूप समिति, विनियामक अधिकार और प्रक्रियात्मक सत्य

1. समितियों के विन्यास का दार्शनिक और प्रशासनिक मूलाधार

भारतीय संविधान सभा ने आधुनिक विश्व के सबसे विस्तृत वैधानिक विलेख के विनिर्माण प्रक्रम को सुव्यवस्थित करने के लिए कार्य-विशिष्ट समितियों (Committees) के संजाल का गठन किया था। चूँकि 389 सदस्यीय (विभाजन के पश्चात 299) वृहद सदन में प्रत्येक उपबंध पर विस्तृत तकनीकी विमर्श यांत्रिक रूप से अत्यंत जटिल था, इसलिए 'श्रम के आनुपातिक विभाजन' और विषय-विशेषज्ञता के प्रशासनिक सिद्धांतों के आधार पर जटिल कार्यों को विभिन्न लघु निकायों को हस्तांतरित किया गया।

संविधान सभा की नियमावली के अनुसार, इन समितियों को मुख्य रूप से दो वैधानिक श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया था: **मुख्य (विषय-गत) समितियां** (Major Committees) तथा **लघु (प्रक्रियात्मक) समितियां** (Minor Committees)। इन समितियों के प्रतिवेदन (Reports) और विनियामक अधिकार ही संविधान सभा के भीतर होने वाले प्रक्रियात्मक सत्य और उपबंधों के वाचन का वास्तविक मूलाधार थे।

2. संविधान सभा की प्रमुख समितियां एवं नेतृत्व पद आर्डर

संविधान सभा के विनिर्देशों के अनुसार, 8 सबसे महत्वपूर्ण विषय-गत समितियों का गठन किया गया था, जिनके नेतृत्व का विन्यास तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन के सर्वप्रमुख विधायी और नीतिगत विचारकों को सौंपा गया था:

2.1 संघ शक्ति समिति एवं संघीय संविधान समिति

- **नेतृत्व विन्यास:** इन दोनों सर्वप्रमुख समितियों के अध्यक्ष विधिक रूप से **पंडित जवाहरलाल नेहरू** थे।
- **विनियामक अधिकार:** संघ शक्ति समिति (Union Powers Committee) के पास कुल 9 सदस्य थे और इसका मुख्य वैधानिक कार्य यह तय करना था कि प्रस्तावित भारतीय संघ के केंद्रीय क्षेत्राधिकार में कौन से सामरिक और राजकोषीय विषय आरक्षित रहेंगे। संघीय संविधान समिति (Union Constitution Committee) का कार्य केंद्र के ऊर्ध्वाधर विधायी ढांचे और कार्यपालिका के विनियामक मापदंडों का खाका तैयार करना था।

2.2 प्रांतीय संविधान समिति

- **नेतृत्व विन्यास:** इस समिति के अध्यक्ष **सरदार वल्लभभाई पटेल** विधिक रूप से नियुक्त किए गए थे।
- **विनियामक अधिकार:** इस निकाय का प्राथमिक कार्य प्रांतों की प्रशासनिक स्वायत्तता, राज्यपाल (Governor) के पद की विधिक सीमा और प्रांतीय विधानमंडलों की शक्तियों का आनुपातिक संतुलन निर्धारित करना था।

2.3 प्रक्रिया नियम समिति एवं संचालन समिति

- **नेतृत्व विन्यास:** इन दोनों प्रशासनिक निकायों के अध्यक्ष सर्वसम्मति से संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष **डॉ. राजेंद्र प्रसाद** बनाए गए थे।
- **विनियामक अधिकार:** प्रक्रिया नियम समिति (Rules of Procedure Committee) का मुख्य कार्य सदन के भीतरी आचरण, बैठकों के कोरम और वाचन के विनियामक नियमों का निर्धारण करना था, जबकि संचालन समिति (Steering Committee) सभा के विधायी एजेंडे और समय प्रबंधन की सर्वोच्च नियंत्रक कड़ी थी।

2.4 मौलिक अधिकार, अल्पसंख्यक एवं जनजातीय सलाहकार समिति

- **नेतृत्व विन्यास:** यह संविधान सभा की सांख्यिकीय रूप से सबसे विशाल और जटिल परामर्शदात्री समिति (Advisory Committee) थी, जिसके अध्यक्ष **सरदार वल्लभभाई पटेल** थे।
- **उप-समितियों का विन्यास:** इस वृहद समिति के कार्यों को सुव्यवस्थित करने के लिए 5 विशिष्ट उप-समितियों (Sub-Committees) का गठन किया गया था, जिनमें से दो सर्वप्रमुख विन्यासों का विवरण आरपीएससी परीक्षाओं की उत्तर-कुंजी हेतु रक्षात्मक आधार प्रस्तुत करता है:

1. **मौलिक अधिकार उप-समिति:** इसके अध्यक्ष विधिक रूप से **जे. बी. कृपलानी** (जीवतराम भगवानदास कृपलानी) थे।

2. **अल्पसंख्यक उप-समिति:** इसके अध्यक्ष **एच. सी. मुखर्जी** (हरेंद्र कुमार मुखर्जी) विधिक रूप से नियुक्त थे।

सारणी 10.1: प्रमुख विषय-गत समितियों का प्रशासनिक ढांचा

समिति का प्रामाणिक नाम	विनिर्दिष्ट विधिक अध्यक्ष	प्राथमिक विनियामक / विधायी क्षेत्राधिकार
संघ शक्ति समिति	पंडित जवाहरलाल नेहरू	केंद्रीय कमान और मजबूत वित्तीय संघवाद के विषयों का निर्धारण।
संघीय संविधान समिति	पंडित जवाहरलाल नेहरू	केंद्र की विधायी संरचना और कार्यपालिका शक्तियों का प्रारूप।
प्रांतीय संविधान समिति	सरदार वल्लभभाई पटेल	प्रांतीय स्वायत्तता और राज्यपाल के विवेकाधीन अधिकारों का नियमन।
प्रक्रिया नियम समिति	डॉ. राजेंद्र प्रसाद	सदन के भीतरी आचरण, वाचन और विधायी नियमों का निर्धारण।
संचालन समिति (Steering)	डॉ. राजेंद्र प्रसाद	संविधान सभा के दैनिक एजेंडे और समय चक्र का विनियामक प्रबंधन।
सलाहकार समिति (Advisory)	सरदार वल्लभभाई पटेल	मौलिक अधिकारों और अल्पसंख्यकों के वैधानिक संरक्षण का वृहद संस्तर।
मौलिक अधिकार उप-समिति	जे. बी. कृपलानी	भाग III के नागरिक अधिकारों (अनुच्छेद 14-35) का प्राथमिक ड्राफ्ट।
अल्पसंख्यक उप-समिति	एच. सी. मुखर्जी	धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के सुरक्षात्मक कपाटों का नियमन।

3. प्रारूप समिति (Drafting Committee): सर्वोच्च विधायी शिल्पकार

भारतीय संविधान सभा के संपूर्ण इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण, संवेदी और रणनीतिक वैधानिक समिति 'प्रारूप समिति' या 'प्रारूप समिति' थी। इसका गठन **29 अगस्त 1947** को एक विशेष विधायी संकल्प पारित करके किया गया था। इस समिति का प्राथमिक विधिक दायित्व संवैधानिक सलाहकार सर बी. एन. राव द्वारा तैयार

किए गए प्राथमिक मसौदे (First Draft) का गहन भू-वैधानिक विश्लेषण करना तथा स्वतंत्र भारत के संविधान का एक अंतिम परिपक्व प्रारूप विनिर्मित करना था।

3.1 डॉ. बी. आर. अंबेडकर का निर्वाचन एवं नेतृत्व

- **अध्यक्ष पद विन्यास:** 30 अगस्त 1947 को आयोजित प्रारूप समिति की प्रथम बैठक में डॉ. भीमराव अंबेडकर को सर्वसम्मति से इस समिति का विधिक अध्यक्ष चुना गया। * **शिल्पकार की भूमिका:** अध्यक्ष के रूप में डॉ. अंबेडकर ने विभिन्न देशों के विधिक सिद्धांतों का भारतीय सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल रूपांतरण करने में एक क्रांतिकारी और रक्षात्मक भूमिका निभाई, जिसके कारण उन्हें 'आधुनिक मनु' और भारतीय संविधान के जनक की वैधानिक संज्ञा दी जाती है।

3.2 प्रारूप समिति की सांख्यिकीय बनावट (7 सदस्यीय विन्यास)

प्रारूप समिति में कुल 7 सदस्य शामिल थे, जिनका दलीय और विधिक विन्यास अत्यधिक परिपक्व था। आरपीएससी प्रारंभिक परीक्षा के मानदंडों के अनुसार इन सभी सात नामों का सटीक स्मरण अनिवार्य है:

1. **डॉ. बी. आर. अंबेडकर (अध्यक्ष):** प्रख्यात विधिवेत्ता और शोषित वर्गों के राजनीतिक संवाहक (बम्बई प्रेसिडेंसी से निर्वाचित)।
2. **एन. गोपालस्वामी आयंगर:** मद्रास के पूर्व दीवान और संघीय प्रणालियों के विशेषज्ञ।
3. **अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर:** मद्रास के पूर्व एडवोकेट जनरल और विख्यात न्यायविद।
4. **डॉ. के. एम. मुंशी (कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी):** यह प्रारूप समिति के भीतर एकमात्र ऐसे सदस्य थे जो विशुद्ध रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मूल दलीय टिकट पर चुनकर आए थे।
5. **सैयद मोहम्मद सादुल्ला:** असम के पूर्व मुख्यमंत्री और मुस्लिम लीग के सर्वप्रमुख विधिक प्रतिनिधि।
6. **एन. माधव राव:** इन्हें बी. एल. मित्र (B. L. Mitter) के अस्वस्थ होने के कारण उनके विधिक त्यागपत्र के पश्चात समिति में सदस्य के रूप में विस्थापित किया गया था।
7. **टी. टी. कृष्णामाचारी:** इन्हें वर्ष 1948 में प्रारूप समिति के मूल सदस्य डी. पी. खेतान (D. P. Khaitan) की आकस्मिक मृत्यु हो जाने के कारण सांख्यिकीय रिक्तता को भरने हेतु विधिक रूप से शामिल किया गया था।

4. प्रारूप समिति के विनियामक अधिकार और विलेख निर्माण चक्र

प्रारूप समिति को संविधान सभा द्वारा व्यापक विनियामक अधिकार (Regulatory Powers) सौंपे गए थे, जिसके तहत उसने संविधान विलेख के निर्माण चक्र को तीन चरणों के अंतर्गत गतिक बनाया:

- **प्रथम प्रारूप का प्रकाशन:** प्रारूप समिति ने सघन विचार-विमर्श के पश्चात **फरवरी 1948** में भारत के संविधान का पहला आधिकारिक प्रारूप प्रकाशित किया। इस विलेख को भारत के नागरिकों, प्रांतीय विधानसभाओं और विधिक विशेषज्ञों के सामने व्यापक संवीक्षा और सुझावों के लिए रखा गया। इस पर चर्चा हेतु कुल 8 महीने का सांख्यिकीय समय दिया गया।
- **द्वितीय प्रारूप का विन्यास:** नागरिकों से प्राप्त लगभग 7,635 संशोधनों के सुझावों (जिनमें से 2,473 पर सदन में वास्तविक चर्चा हुई) का वैज्ञानिक विश्लेषण कर समिति ने **अक्टूबर 1948** में दूसरा संशोधित प्रारूप विधिक रूप से प्रस्तुत किया।
- **अंतिम वाचन प्रस्तुति:** डॉ. अंबेडकर ने **4 नवंबर 1948** को संविधान का अंतिम प्रारूप ('द कॉन्स्टिट्यूशन एज सेटलड बाई द असेंबली बी पासड') सभा के पटल पर आधिकारिक रूप से वाचन हेतु प्रस्तुत किया।

5. प्रक्रियात्मक सत्य (Procedural Truth) और त्रि-स्तरीय वाचन प्रक्रम

भारतीय संविधान का विनिर्माण किसी बहुमत के दमनकारी निर्णयों से नहीं, बल्कि 'आम सहमति' (Consensus) और 'समायोजन' (Accommodation) के प्रक्रियात्मक सत्य द्वारा संचालित हुआ था। संविधान सभा के भीतर किसी भी उपबंध को सीधे वोटिंग द्वारा पास करने के बजाय प्रत्येक मतभेद का तार्किक और विधिक शमन किया जाता था। इस प्रक्रियात्मक सत्य को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रारूप समिति द्वारा प्रस्तुत विलेख का **तीन पृथक वाचन चरणों** (Three Readings) के अंतर्गत गहन संवीक्षा प्रक्रम चलाया गया:

5.1 प्रथम वाचन (First Reading)

- **अवधि गतिकी:** 4 नवंबर 1948 से 9 नवंबर 1948 तक (कुल 5 दिन)।
- **विशिष्ट लक्षण:** इस चरण के दौरान संविधान के प्रारूप पर केवल सामान्य चर्चा की गई और इसके मूलभूत दार्शनिक सिद्धांतों को विधायी पटल पर परखा गया।

5.2 द्वितीय वाचन (Second Reading) - खंडवार संवीक्षा

- अवधि गतिकी: 15 नवंबर 1948 से 17 अक्टूबर 1949 तक की एक अत्यंत लंबी ऐतिहासिक समयावधि।
- विशिष्ट लक्षण: यह संविधान निर्माण का सबसे सघन, व्यापक और क्रिटिकल चरण था, जिसके तहत संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद, उपबंध और शब्दों पर खंडवार (Clause by Clause) विस्तृत बहस की गई। इसी चरण के दौरान सदन के भीतर हजारों संशोधन प्रस्ताव लाए गए और प्रारूप समिति ने प्रत्येक विधिक प्रश्न का तार्किक उत्तर देकर आम सहमति का विनिर्माण किया।

5.3 तृतीय वाचन (Third Reading) - वैधानिक अंगीकार

- अवधि गतिकी: 14 नवंबर 1949 से 26 नवंबर 1949 तक।
- विशिष्ट लक्षण: इस चरण में प्रारूप की अंतिम भाषाई शुद्धता को परखा गया। 26 नवंबर 1949 को यह ऐतिहासिक वाचन प्रक्रम पूर्ण हुआ और सभा ने स्वतंत्र भारत के संविधान को विधिक रूप से अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित (Adopt, Enact and Give to ourselves) कर लिया।

6. समेकित तुलनात्मक तालिका: प्रारूप समिति की सांख्यिकीय एवं सदस्यवार संरचना

सारणी 10.2: प्रारूप समिति के सदस्यों का विधिक एवं संस्थागत प्रतिरूप

सदस्य का प्रामाणिक नाम	समिति में वैधानिक स्थिति	दलीय / प्रादेशिक संरक्षण कड़ी	विशिष्ट विनियामक / प्रतिस्थापन लक्षण
डॉ. बी. आर. अंबेडकर	विधिक अध्यक्ष	शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन / बम्बई	संविधान के मुख्य शिल्पकार, आधुनिक मनु की संज्ञा।
एन. गोपालस्वामी आयंगर	सदस्य	मद्रास प्रांत विधायी विन्यास	कश्मीर की विधिक स्थिति (अनुच्छेद 370 ड्राफ्ट) के सूत्रधार।
अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर	सदस्य	मद्रास प्रांत विधायी विन्यास	नागरिकता और मौलिक अधिकारों के प्रख्यात विधिवेत्ता।
डॉ. के. एम. मुंशी	सदस्य	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (विशुद्ध)	कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी; रियासती एकीकरण के विशेषज्ञ।
सैयद मोहम्मद सादुल्ला	सदस्य	मुस्लिम लीग प्रतिनिधि / असम	असम के पूर्व मुख्यमंत्री; अल्पसंख्यक वित्तीय कड़ी विशेषज्ञ।
एन. माधव राव	सदस्य	देशी रियासत प्रशासनिक संस्तर	बी. एल. मित्र के अस्वस्थ होने पर उनके स्थान पर प्रविष्टि।

टी. टी. कृष्णामाचारी	सदस्य	मद्रास / कांग्रेस संरक्षण	1948 में डी. पी. खेतान की मृत्यु के पश्चात सांख्यिकीय प्रतिस्थापन।
----------------------	-------	---------------------------	--

7. लघु समितियों का प्रशासनिक विन्यास (Minor Committees)

मुख्य विषय-गत समितियों के अतिरिक्त, संविधान सभा के प्रक्रियात्मक कार्यों को गतिक बनाए रखने के लिए कई विशिष्ट लघु समितियों का गठन किया गया था, जिनका मिलान सूचियों में बार-बार पूछा जाता है:

- **तदर्थ राष्ट्रीय ध्वज समिति (Ad Hoc Committee on the National Flag):** इसके अध्यक्ष विधिक रूप से डॉ. राजेंद्र प्रसाद थे (कई अप्रामाणिक स्रोतों में जे. बी. कृपलानी का नाम मिलता है, जो सर्वथा अशुद्ध है)।
- **संविधान सभा के कार्यों से संबद्ध समिति:** इसके अध्यक्ष जी. वी. मावलंकर (गणेश वासुदेव मावलंकर) थे, जिन्होंने अंतरिम संसद के रूप में सभा के विधायी कार्यों का विनियामक संचालन किया।
- **सर्वोच्च न्यायालय हेतु तदर्थ समिति:** इसके अध्यक्ष एस. वरदाचार्यार (S. Varadachariar) थे, जो संविधान सभा के सदस्य नहीं थे; यह बाहरी विशेषज्ञता के अनुप्रयोग का उत्कृष्ट उदाहरण था।
- **मुख्य आयुक्त के प्रांतों से संबद्ध समिति:** इसके अध्यक्ष बी. पट्टाभि सीतारमैया विधिक रूप से नियुक्त थे।

8. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **प्रारूप समिति (Drafting Committee):** संविधान सभा द्वारा 29 अगस्त 1947 को गठित वह 7 सदस्यीय रणनीतिक समिति जो संविधान के अंतिम वैधानिक पाठ (Final Text) के विनिर्माण हेतु सर्वोच्च प्राधिकृत थी।
- **प्रक्रियात्मक सत्य (Procedural Truth):** उपबंधों को केवल बहुमत के बल पर पास न करके प्रत्येक असहमत स्वर का तार्किक शमन करने और आम सहमति (Consensus) निर्मित करने की लोकतांत्रिक विधायी कार्यप्रणाली।
- **खंडवार संवीक्षा (Clause-by-Clause Scrutiny):** द्वितीय वाचन के दौरान प्रयुक्त वह गहन विधायी विधा जिसके तहत प्रत्येक अनुच्छेद और उप-धारा पर पृथक रूप से बहस और संशोधन क्रियान्वित किए जाते हैं।
- **खनिजीय विधायी लाभकारी संयंत्र:** विभिन्न देशों के विदेशी कानूनी विन्यासों में से दोषपूर्ण अंशों को छानकर केवल भारत की जनसांख्यिकी के सर्वथा अनुकूल तत्वों को अंगीकार करने का प्रारूप समिति का तकनीकी प्रक्रम।
- **तदर्थ समिति (Ad-hoc Committee):** किसी विशिष्ट और तात्कालिक उद्देश्य (जैसे राष्ट्रीय ध्वज का चयन) के लिए गठित की जाने वाली अस्थायी वैधानिक समिति जो कार्य पूर्ण होने पर स्वतः लुप्त हो जाती है।

9. समितियों के विनियामक निर्णयों का आधुनिक विधायी भूगोल पर प्रभाव

संविधान सभा की इन विभिन्न समितियों द्वारा किए गए सघन नीतिगत निर्णयों ने स्वतंत्र भारत के प्रशासनिक और विधायी भूगोल को अभेद्य स्थायित्व प्रदान किया:

A. मजबूत और अविनाशी संघ का विनिर्माण (संघीय संविधान समिति):

- नेहरू के नेतृत्व वाली संघीय संविधान समिति ने प्रारंभ में कैबिनेट मिशन के 'कमजोर केंद्र' के मॉडल को पूरी तरह खारिज कर दिया। विभाजन की विभीषिका का वैज्ञानिक विश्लेषण कर इस समिति ने यह विधिक निर्णय लिया कि स्वतंत्र भारत का केंद्र अत्यधिक मजबूत (Strong Centre) होना अनिवार्य है। यही कारण है कि प्रारूप समिति ने अनुच्छेद 1 के अंतर्गत भारत को 'राज्यों का संघ' (Union of States) के रूप में विस्थापित किया; राज्यों को संघ से अलग होने (Secede) का कोई विधिक वैधानिक अधिकार नहीं दिया गया, जिससे देश की प्रादेशिक संप्रभुता अक्षुण्ण बनी रही।

B. मूलभूत अधिकारों का न्यायसंगत विन्यास (मौलिक अधिकार उप-समिति):

- जे. बी. कृपलानी और सरदार पटेल की समितियों के मध्य इस विषय पर लंबा विमर्श हुआ कि किन अधिकारों को अदालत द्वारा लागू करने योग्य (Justiciable) बनाया जाए और किन्हें नीति निदेशक तत्वों में रखा जाए। इसी प्रक्रियात्मक सत्य के परिणामस्वरूप अधिकारों का वर्गीकरण भाग III (मौलिक

अधिकार - अनुच्छेद 32 के तहत रिट क्षेत्राधिकार युक्त) तथा भाग IV (नीति निदेशक तत्व - अनुच्छेद 37 के तहत गैर-वादयोग्य परंतु शासन के मूलाधार) के रूप में अत्यंत वैज्ञानिक आनुपातिक संतुलन के साथ स्थिर हुआ।

10. प्रारूप समिति के समक्ष आधुनिक विनियामक एवं संरचनात्मक चुनौतियां

प्रारूप समिति को संविधान निर्माण के अंतिम चरणों में कई गंभीर वैधानिक विरोधाभासों और जनसांख्यिकीय दबावों का सामना करना पड़ा, जिनका नीतिगत अनुकूलन डॉ. अंबेडकर के विधिक कौशल द्वारा किया गया:

1. **भाषाई आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन का संकट:** दक्षिण भारत (मद्रास प्रेसिडेंसी) से भाषाई आधार पर नए राज्यों के विनिर्माण की मांग उग्र हो रही थी। इसके नियमन हेतु संविधान सभा के अध्यक्ष द्वारा 'एस. के. धर आयोग' (1948) का गठन किया गया, जिसने प्रशासनिक सुगमता को प्राथमिक पैमाना माना, न कि भाषा को। प्रारूप समिति ने इसी रिपोर्ट के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के तात्कालिक विधायी कपाटों को बंद रखा और नए राज्यों के निर्माण की शक्ति सीधे **संसद के अनुच्छेद 3 व 4** के विनियामक नियंत्रण में आरक्षित कर दी।
2. **देशी रियासतों के वित्तीय एकीकरण की चुनौती:** वी. टी. कृष्णामाचारी और प्रारूप समिति के मध्य रियासतों के संचित कोषों, उनके विधिक ऋणों और कर प्रणालियों के केंद्रीय बजटीय एकीकरण को लेकर भारी गतिरोध उत्पन्न हुआ। इसके शमन हेतु 'राजकोषीय संधीय कड़ि' के नियमों को कड़ा किया गया और रियासतों को अंतर-प्रादेशिक स्तर पर आंशिक वित्तीय सहायता (Privy Purse) देने का वैधानिक वादा अस्थाई रूप से स्वीकार किया गया ताकि अखंड भारत के नक्शे को विधिक स्थायित्व मिल सके।

अध्याय 11: भारतीय संविधान की प्रकृति: संघात्मक बनाम एकात्मक और के.सी. व्हीयर का विरोधाभास

भारतीय संविधान के स्वरूप और उसकी प्रकृति का निर्धारण राजनीतिक दर्शन और संवैधानिक विधि का एक अत्यंत जटिल विषय है। सामान्यतः विश्व के संविधानों को उनकी शक्तियों के वितरण के आधार पर दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है: **एकात्मक (Unitary)** और **संघात्मक (Federal)**। भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक ऐसी विशिष्ट प्रणाली को अपनाया जो न तो पूरी तरह एकात्मक है और न ही पूरी तरह संघात्मक, बल्कि यह दोनों का एक अनूठा समन्वय है।

1. संघात्मक शासन व्यवस्था: अर्थ एवं आधारभूत तत्व

संघात्मक संविधान वह होता है जिसमें शक्तियाँ केंद्र और उसकी इकाइयों (राज्यों) के बीच विधिक रूप से विभाजित होती हैं और दोनों ही अपने-अपने अधिकार क्षेत्र में स्वतंत्र होते हैं। भारतीय संविधान में विद्यमान संघात्मक लक्षण निम्नलिखित हैं:

- **द्वैध शासन प्रणाली (Dual Polity):** भारतीय संविधान केंद्र और राज्यों के स्तर पर दो सुस्पष्ट सरकारों की स्थापना करता है। प्रत्येक को अपने निर्धारित क्षेत्र में संप्रभु शक्तियाँ प्राप्त हैं।
- **शक्तियों का विभाजन (Division of Powers):** सातवीं अनुसूची के अंतर्गत संघ सूची (97 विषय - वर्तमान 100), राज्य सूची (66 विषय - वर्तमान 61) और समवर्ती सूची (47 विषय - वर्तमान 52) के माध्यम से स्पष्ट विभाजन किया गया है।
- **संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of the Constitution):** केंद्र या राज्य सरकार द्वारा निर्मित कोई भी कानून यदि संविधान के प्रावधानों के विरुद्ध है, तो उसे न्यायपालिका द्वारा शून्य घोषित किया जा सकता है।
- **लिखित एवं कठोर संविधान (Written and Rigid Constitution):** संघीय ढांचे से संबंधित प्रावधानों में संशोधन के लिए अनुच्छेद 368 के तहत संसद के विशेष बहुमत के साथ-साथ कम से कम आधे राज्यों के अनुसमर्थन की आवश्यकता होती है।

- **स्वतंत्र न्यायपालिका (Independent Judiciary):** केंद्र और राज्यों के बीच विधिक विवादों के समाधान के लिए सर्वोच्च न्यायालय को एक निष्पक्ष मध्यस्थ के रूप में स्थापित किया गया है।
- **द्विसदनीय विधायिका (Bicameralism):** संसद में उच्च सदन (राज्यसभा) राज्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करता है, जो संघीय ढांचे का एक अनिवार्य रक्षक है।

2. एकात्मक शासन व्यवस्था: अर्थ एवं भारतीय संविधान में झुकाव

एकात्मक संविधान वह है जिसमें समस्त शक्तियाँ एक ही केंद्रीय इकाई में निहित होती हैं। भारतीय संविधान में कुछ ऐसे प्रावधान हैं जो संकटकाल या विशिष्ट परिस्थितियों में केंद्र को राज्यों की तुलना में अत्यधिक शक्तिशाली बना देते हैं। इन्हें 'एकात्मक झुकाव' कहा जाता है:

- **सशक्त केंद्र (Strong Centre):** संघ सूची में महत्वपूर्ण और अधिक संख्या में विषय शामिल हैं। समवर्ती सूची में गतिरोध की स्थिति में केंद्रीय कानून प्रभावी होता है।
- **राज्यों की अनश्वरता का अभाव:** अनुच्छेद 3 के तहत संसद किसी भी राज्य की सीमा, नाम या क्षेत्र में उसकी सहमति के बिना परिवर्तन कर सकती है। भारत "विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ" है।
- **एकल संविधान (Single Constitution):** राज्यों का अपना कोई पृथक संविधान नहीं है (जम्मू-कश्मीर के विशेष दर्जे के निरसन के बाद अब यह पूर्णतः प्रभावी है)।
- **एकल नागरिकता (Single Citizenship):** अमेरिका के विपरीत भारत में केवल संघ की नागरिकता है, राज्यों की नहीं।
- **आपातकालीन उपबंध (Emergency Provisions):** अनुच्छेद 352, 356 और 360 के प्रभावी होने पर संघीय ढांचा पूरी तरह एकात्मक में परिवर्तित हो जाता है।
- **अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services):** अनुच्छेद 312 के तहत नियुक्त अधिकारी राज्यों में कार्य करते हैं लेकिन उन पर अंतिम नियंत्रण केंद्र का होता है।
- **राज्यपाल की नियुक्ति:** राज्यपाल केंद्र के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है, जो राज्यों की स्वायत्तता पर एक केंद्र का विनियामक अंकुश है।
- **एकीकृत न्यायपालिका:** भारत में सर्वोच्च न्यायालय से लेकर अधीनस्थ न्यायालयों तक एक ही विधिक कड़ी है।

3. के.सी. व्हीयर (K.C. Wheare) का विरोधाभास: अर्ध-संघात्मक अवधारणा

प्रख्यात ब्रिटिश संविधानविद के.सी. व्हीयर ने भारतीय संविधान का विश्लेषण करते हुए इसे 'अर्ध-संघात्मक' (Quasi-Federal) की संज्ञा दी। उनका यह विरोधाभासी निष्कर्ष भारतीय संविधान के "संघात्मक रूप लेकिन एकात्मक आत्मा" पर आधारित था।

व्हीयर के तर्क के मुख्य बिंदु:

1. **एकात्मक राज्य जिसमें संघीय विशेषताएँ हैं:** व्हीयर के अनुसार, भारत मूलतः एक एकात्मक राज्य है जिसने प्रशासनिक सुगमता के लिए कुछ संघीय विशेषताओं को अपनाया है, न कि एक संघीय राज्य जिसने एकात्मक तत्वों को अपनाया है।
2. **राज्यों की निर्भरता:** राज्यों की वित्तीय और विधायी निर्भरता केंद्र पर इतनी अधिक है कि वे स्वतंत्र इकाई के रूप में कार्य नहीं कर पाते।
3. **संशोधन की शक्ति:** केंद्र के पास संविधान के बड़े हिस्से को संशोधित करने की एकतरफा शक्ति है।

महत्वपूर्ण टिप्पणी: जहाँ के.सी. व्हीयर इसे 'अर्ध-संघात्मक' कहते हैं, वहीं अन्य विद्वानों के मत भिन्न हैं:

- **मौरिस जोन्स:** 'सौदेबाजी वाला संघवाद' (Bargaining Federalism)।
- **ग्रेनविले ऑस्टिन:** 'सहयोगपूर्ण संघवाद' (Cooperative Federalism)।
- **पॉल एप्पलबी:** 'अत्यंत केंद्रीकृत संघवाद'।

4. विधिक शब्दावली और मुख्य अवधारणाएँ (Key-Words)

संवैधानिक प्रकृति को समझने के लिए निम्नलिखित तकनीकी शब्दों का ज्ञान अनिवार्य है:

- **विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ:** इसका अर्थ है कि संघ से अलग होने का अधिकार किसी राज्य को नहीं है, लेकिन संघ राज्यों का पुनर्गठन कर सकता है।

- **अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Powers):** अनुच्छेद 248 के तहत वे विषय जो तीनों सूचियों में नहीं हैं, केंद्र के पास निहित हैं (कनाडा के संविधान से प्रेरित)।
- **आनुपातिक प्रतिनिधित्व:** राज्यसभा में राज्यों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर है, न कि समानता के आधार पर (जैसा कि अमेरिका में है)।
- **पूर्ण न्याय निर्णय (Judicial Review):** न्यायपालिका द्वारा संघीय शक्तियों के अतिक्रमण की जाँच करने की शक्ति।

5. तुलनात्मक सांख्यिकीय विवरण एवं तालिकाएँ

तालिका 11.1: संघात्मक बनाम एकात्मक लक्षणों का तुलनात्मक विन्यास

विशेषता	संघात्मक लक्षण (Federal Features)	एकात्मक लक्षण (Unitary Features)
सरकारों का स्तर	दोहरी सरकार (केंद्र एवं राज्य)	सशक्त केंद्रीय सरकार
शक्तियों का स्रोत	संविधान द्वारा स्पष्ट विभाजन	शक्तियों का केंद्र में संकेंद्रीकरण
संविधान की प्रकृति	लिखित एवं कठोर	लचीला संविधान (कुछ मामलों में)
नागरिकता	दोहरी नागरिकता (सैद्धांतिक रूप में)	एकल नागरिकता (भारतीय वास्तविकता)
न्यायपालिका	स्वतंत्र एवं सर्वोच्च	एकीकृत न्यायिक ढांचा
संकटकाल	शक्तियों का विकेंद्रीकरण बना रहता है	केंद्र की पूर्ण संप्रभुता (अनुच्छेद 352)

तालिका 11.2: सातवीं अनुसूची - विषयों का सांख्यिकीय विभाजन

सूची	मूल विषय (1950)	वर्तमान विषय (2024-25 के अनुसार)	नियंत्रण
संघ सूची	97	100	केवल संसद
राज्य सूची	66	61	सामान्यतः राज्य विधानमंडल

समवर्ती सूची	47	52	केंद्र एवं राज्य दोनों
--------------	----	----	------------------------

नोट: 42वें संविधान संशोधन 1976 द्वारा 5 विषयों (शिक्षा, वन, नाप-तौल, वन्यजीव संरक्षण और न्याय प्रशासन) को राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित किया गया।

6. संघीय ढांचे पर न्यायिक दृष्टिकोण एवं रक्षात्मक स्थिति

भारतीय न्यायपालिका ने समय-समय पर संविधान की प्रकृति को स्पष्ट किया है। विशेष रूप से **एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994)** वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक निर्णय दिया:

1. **संघवाद 'मूल ढांचा' है:** न्यायालय ने घोषित किया कि 'संघवाद' भारतीय संविधान के मूल ढांचे (Basic Structure) का हिस्सा है।
2. **राज्यों की स्वतंत्र सत्ता:** राज्य केवल केंद्र के अधीनस्थ अंग नहीं हैं। उनका अपना स्वतंत्र संवैधानिक अस्तित्व है।
3. **अनुच्छेद 356 का सीमित प्रयोग:** केंद्र राज्यों की शक्तियों का अतिक्रमण केवल अपरिहार्य परिस्थितियों में ही कर सकता है, राजनीतिक कारणों से नहीं।

7. प्रशासनिक कड़ियाँ और वित्तीय संघवाद

भारत की प्रकृति को समझने के लिए **वित्त आयोग (Finance Commission)** और **जीएसटी परिषद (GST Council)** की भूमिका महत्वपूर्ण है:

- **अनुच्छेद 280:** राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक 5 वर्ष में वित्त आयोग का गठन किया जाता है, जो केंद्र और राज्यों के बीच करों के शुद्ध आगमों के वितरण की सिफारिश करता है। यह केंद्र के 'वित्तीय अधिनायकवाद' को रोकने का एक रक्षात्मक उपाय है।
- **सहयोगपूर्ण संघवाद:** नीति आयोग और अंतर-राज्यीय परिषद (अनुच्छेद 263) जैसे निकाय केंद्र-राज्य समन्वय के माध्यम से संघीय भावना को पुष्ट करते हैं।

8. महत्वपूर्ण तथ्य और अद्यतन विवरण

- **101वाँ संशोधन:** वस्तु एवं सेवा कर (GST) के माध्यम से 'राजकोषीय संघवाद' के एक नए युग की शुरुआत हुई है, जहाँ राज्यों ने अपनी कुछ कर लगाने की शक्तियाँ एक साझा परिषद को सौंपी हैं।
- **अनुच्छेद 249:** यदि राज्यसभा दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करे, तो संसद राज्य सूची के विषय पर राष्ट्रीय हित में कानून बना सकती है। यह एकात्मकता का एक प्रबल उदाहरण है।
- **अनुच्छेद 252:** दो या दो से अधिक राज्यों के अनुरोध पर संसद द्वारा कानून निर्माण।
- **अनुच्छेद 253:** अंतरराष्ट्रीय संधियों को लागू करने के लिए राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने की शक्ति।

9. विषय केन्द्रित पारिभाषिक शब्दावली

- **Centripetal Federation (अभिकेंद्री संघ):** जहाँ केंद्र शक्तियों को अपनी ओर खींचता है।
- **Doctrine of Immunity of Instrumentalities:** केंद्र और राज्य एक-दूसरे की संपत्तियों पर कर नहीं लगाएंगे (सीमित अपवादों के साथ)।
- **Colorable Legislation (छद्म विधान):** जब केंद्र अप्रत्यक्ष रूप से उन शक्तियों का प्रयोग करने की कोशिश करता है जो उसे सीधे तौर पर प्राप्त नहीं हैं।
- **Sui Generis (अपने आप में अनूठा):** वह व्यवस्था जो किसी स्थापित वर्गीकरण में फिट नहीं होती। कई विद्वान भारतीय संविधान को 'सुई जेनेरिस' मानते हैं।

10. सारांश एवं निष्कर्ष

भारतीय संविधान की प्रकृति को किसी एक शब्द (संघात्मक या एकात्मक) में बांधना संभव नहीं है। यह एक **'सहयोगपूर्ण संघवाद'** है जिसे राष्ट्रीय एकता और अखंडता सुनिश्चित करने के लिए 'एकात्मक झुकाव' के साथ बनाया गया है। डॉ. बी.आर. अंबेडकर के शब्दों में, "संविधान को संघीय ढांचे के कड़े साँचे में नहीं ढाला गया है। यह समय और परिस्थितियों के अनुसार एकात्मक और संघात्मक दोनों हो सकता है।"

के.सी. व्हीयर का विरोधाभास आज के समय में आंशिक रूप से ही प्रासंगिक है, क्योंकि भारतीय संघवाद अब 'सौदेबाजी' या 'अर्ध-संघवाद' से आगे बढ़कर 'प्रतिस्पर्धी और सहयोगपूर्ण संघवाद' की दिशा में अग्रसर है। राज्यों की बढ़ती राजनैतिक चेतना और न्यायपालिका के सक्रिय संरक्षण ने भारतीय संघीय ढांचे को पहले की तुलना में अधिक रक्षात्मक और संतुलित बना दिया है।

अध्याय 12: भारतीय संविधान के विदेशी स्रोत: विभिन्न देशों के वैधानिक ढांचे का भारतीय पारि-पारिस्थितिकी में अनुकूलन

भारतीय संविधान विश्व का सबसे विस्तृत और व्यापक लिखित वैधानिक विलेख है। इसके निर्माण की प्रक्रिया में संविधान सभा ने किसी संकीर्ण वैधानिक दृष्टि के स्थान पर एक वैश्विक और उदार दृष्टिकोण अपनाया। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि भारतीय संविधान का निर्माण "विश्व के ज्ञात संविधानों को छानने" के बाद किया गया है। यह केवल एक "उधार का थैला" नहीं है, बल्कि विभिन्न देशों के उत्कृष्ट विधिक सिद्धांतों का भारतीय सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप किया गया एक 'मेटासोमैटिक विनियामक रूपांतरण' है।

1. वैधानिक अनुकूलन का दार्शनिक आधार

संविधान सभा के मनीषियों ने यह सुनिश्चित किया कि विदेशी स्रोतों से केवल वही सिद्धांत अंगीकार किए जाएं जो भारत की सांस्कृतिक विविधता और संघीय आवश्यकताओं के अनुकूल हों। इस प्रक्रिया को 'पैचवर्क' के स्थान पर 'संवैधानिक चयन' कहा जाता है। उदाहरण के लिए, जहाँ अमेरिका से 'न्यायिक पुनरावलोकन' लिया गया, वहीं ब्रिटेन की तरह 'संसदीय संप्रभुता' के स्थान पर भारत में 'संविधान की सर्वोच्चता' को स्थापित किया गया।

2. प्रमुख विदेशी स्रोत एवं उनका विनियामक विन्यास

2.1 ब्रिटेन (United Kingdom): संसदीय शासन का संस्तर

भारतीय संसदीय प्रणाली का लगभग संपूर्ण प्रशासनिक ढांचा ब्रिटिश वेस्टमिंस्टर मॉडल पर आधारित है।

- **संसदीय शासन प्रणाली:** कार्यपालिका का विधायिका के प्रति उत्तरदायित्व।
- **विधि का शासन (Rule of Law):** अनुच्छेद 14 का मूलाधार, जहाँ कानून सर्वोपरि है।
- **विधायी प्रक्रिया:** संसद में कानून निर्माण की चरणबद्ध विधा।
- **एकल नागरिकता:** राज्यों की पृथक नागरिकता के स्थान पर केवल भारतीय नागरिकता का विन्यास।
- **मंत्रिमंडलीय प्रणाली:** वास्तविक शक्तियों का मंत्रिपरिषद में निहित होना।
- **परमाधिकार लेख (Prerogative Writs):** अनुच्छेद 32 और 226 के तहत रिट जारी करने की शक्ति।
- **द्विसदनीयवाद (Bicameralism):** लोकसभा और राज्यसभा का संरचनात्मक ढांचा।

2.2 संयुक्त राज्य अमेरिका (USA): नागरिक अधिकार एवं न्यायपालिका

अमेरिका से मुख्य रूप से वे सिद्धांत लिए गए जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और संस्थागत संतुलन को सुदृढ़ करते हैं।

- **मूल अधिकार (Fundamental Rights):** भाग III के अंतर्गत नागरिकों को प्राप्त अभेद्य विधिक सुरक्षा कवच।
- **न्यायपालिका की स्वतंत्रता:** कार्यपालिका के हस्तक्षेप से मुक्त न्यायिक विन्यास।
- **न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review):** विधायी अधिनियमों की संवैधानिक वैधता जाँचने की शक्ति।
- **उपराष्ट्रपति का पद:** राज्यसभा के पदेन सभापति के रूप में विन्यास।
- **उच्चतम एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया:** महाभियोग जैसी कठोर विधा।
- **राष्ट्रपति पर महाभियोग:** अनुच्छेद 61 का विनियामक आधार।

2.3 आयरलैंड (Ireland): राज्य के नीति निदेशक तत्व

आयरलैंड के संविधान (1937) से भारतीय संविधान के लोक कल्याणकारी स्वरूप को ग्रहण किया गया।

- **राज्य के नीति निदेशक तत्व (DPSP):** भाग IV, जो शासन के मूलभूत सिद्धांतों को निर्देशित करता है।
- **राष्ट्रपति की निर्वाचन पद्धति:** आनुपातिक प्रतिनिधित्व और एकल संक्रमणीय मत प्रणाली।
- **राज्यसभा में मनोनयन:** कला, साहित्य, विज्ञान और समाज सेवा के क्षेत्र से 12 सदस्यों का नामांकन।

3. संघीय ढांचे और आपातकालीन कड़ियों के विदेशी स्रोत

3.1 कनाडा (Canada): सुदृढ़ केंद्र वाला संघ

भारत ने अमेरिका के शिथिल संघ के स्थान पर कनाडा के "विनाशी राज्यों के अविनाशी संघ" के मॉडल को अपनाया।

- **सशक्त केंद्र के साथ संघीय व्यवस्था:** शक्तियों का झुकाव केंद्र की ओर।
- **अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers):** अनुच्छेद 248 के तहत वे विषय जो सूचियों में नहीं हैं, केंद्र के पास निहित होना।
- **राज्यों में राज्यपालों की नियुक्ति:** केंद्र के प्रतिनिधि के रूप में राज्यपाल का विन्यास।
- **उच्चतम न्यायालय का परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार:** अनुच्छेद 143 के तहत राष्ट्रपति को विधिक राय देना।

3.2 ऑस्ट्रेलिया (Australia): व्यापार एवं साझा विधायी कड़ियाँ

- **समवर्ती सूची (Concurrent List):** सातवीं अनुसूची के वे विषय जिस पर केंद्र और राज्य दोनों कानून बना सकते हैं।
- **संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक:** अनुच्छेद 108 के तहत विधायी गतिरोध का शमन।
- **व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता:** भाग XIII के विनियामक प्रावधान।

3.3 जर्मनी (Weimar Constitution): आपातकालीन विन्यास

- **आपातकाल के दौरान मूल अधिकारों का स्थगन:** अनुच्छेद 359 के तहत संकटकाल में मौलिक अधिकारों (अनुच्छेद 20-21 को छोड़कर) के प्रवर्तन का निलंबन।

4. गणतंत्र, संशोधन और विधिक प्रक्रिया के स्रोत

4.1 सोवियत संघ - पूर्ववर्ती USSR (वर्तमान रूस): नागरिक कर्तव्य

- **मूल कर्तव्य (Fundamental Duties):** 42वें संशोधन 1976 द्वारा भाग IV-A में शामिल।
- **प्रस्तावना में न्याय का आदर्श:** सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की त्रिविध कड़ि।

4.2 फ्रांस (France): गणतंत्र एवं स्वतंत्रता के आदर्श

- **गणतंत्रात्मक ढांचा:** राष्ट्र का प्रमुख (राष्ट्रपति) निर्वाचित होगा, वंशानुगत नहीं।
- **स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व:** प्रस्तावना में प्रयुक्त ये शब्द फ्रांसीसी क्रांति के विधिक उत्तराधिकारी हैं।

4.3 दक्षिण अफ्रीका (South Africa): संवैधानिक गतिशीलता

- **संविधान संशोधन की प्रक्रिया:** अनुच्छेद 368 के तहत विशेष बहुमत का विन्यास।
- **राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन:** प्रांतीय विधानसभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व।

4.4 जापान (Japan): विधिक शब्द की शुद्धता

- **विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure Established by Law):** अनुच्छेद 21 का मुख्य आधार, जो 'विधि की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) से तकनीकी रूप से भिन्न है।

5. भारत शासन अधिनियम 1935: सबसे विशाल देशी-विदेशी संकर स्रोत

यद्यपि यह एक औपनिवेशिक अधिनियम था, परंतु भारतीय संविधान का लगभग 60 से 70 प्रतिशत हिस्सा सीधे इसी अधिनियम से लिया गया है।

- **संघीय योजना (Federal Scheme):** केंद्र-राज्य संरचना।
- **न्यायपालिका का ढांचा:** त्रि-स्तरीय न्यायालय प्रणाली।
- **लोक सेवा आयोग:** UPSC और राज्य सेवा आयोगों का प्रशासनिक विन्यास।

- प्रशासनिक विवरण: विस्तृत विनियामक उपबंध।

6. विदेशी स्रोतों का समेकित तुलनात्मक सांख्यिकीय चार्ट

देश/स्रोत	मुख्य अंगीकार किए गए विधिक सिद्धांत	भारतीय संविधान में विशिष्ट प्रभाव
ब्रिटेन	संसदीय प्रणाली, विधि का शासन, एकल नागरिकता	विधायी प्रक्रियाओं की समरूपता
अमेरिका	मूल अधिकार, न्यायिक पुनरावलोकन, महाभियोग	न्यायपालिका की सर्वोच्चता एवं स्वतंत्रता
कनाडा	सशक्त केंद्र, अवशिष्ट शक्तियां, राज्यपाल पद	संघीय संतुलन में केंद्र का वर्चस्व
आयरलैंड	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति चुनाव विधि	लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा
ऑस्ट्रेलिया	समवर्ती सूची, संयुक्त बैठक	अंतर-राज्यीय समन्वय एवं विधायी गतिकी
जर्मनी	आपातकाल में मूल अधिकारों का स्थगन	राष्ट्रीय सुरक्षा एवं संप्रभुता का संरक्षण
रूस (USSR)	मूल कर्तव्य, प्रस्तावना में आर्थिक न्याय	नागरिक उत्तरदायित्व एवं समाजवादी विन्यास
दक्षिण अफ्रीका	संविधान संशोधन प्रक्रिया	संवैधानिक जीवंतता एवं लचीलापन

7. विदेशी सिद्धांतों का भारतीय 'पारिस्थितिकी' में अनुकूलन

संविधान सभा ने विदेशी सिद्धांतों को हूबहू (As-is) नहीं अपनाया, बल्कि उनमें महत्वपूर्ण 'संवैधानिक परिमार्जन' किए।

1. **न्यायिक पुनरावलोकन का संतुलन:** अमेरिका में न्यायपालिका किसी भी कानून को 'प्राकृतिक न्याय' के आधार पर रद्द कर सकती है। भारत में इसे 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' (जापान से प्रेरित) के साथ संतुलित किया गया, ताकि संसद और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का टकराव न हो।
2. **धर्मनिरपेक्षता का भारतीय प्रतिरूप:** पश्चिमी देशों में धर्मनिरपेक्षता (Secularism) का अर्थ धर्म और राज्य का पूर्ण अलगाव है। भारत ने इसे 'सर्व धर्म समभाव' के रूप में अपनाया, जहाँ राज्य सभी धर्मों को समान संरक्षण देता है लेकिन किसी का पक्ष नहीं लेता।
3. **संघवाद का विशिष्ट विन्यास:** अमेरिका में दोहरी नागरिकता और पृथक राज्य संविधान हैं। भारत ने कनाडा के मॉडल पर 'एकल नागरिकता' और 'एकीकृत न्यायपालिका' को अपनाया ताकि राष्ट्र की अखंडता बनी रहे।

8. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया:** वह सिद्धांत जहाँ न्यायालय केवल यह देखता है कि कानून निर्माण की विहित प्रक्रिया का पालन हुआ है या नहीं।
- **अवशिष्ट शक्तियाँ:** वे विधायी विषय जिनका उल्लेख संघ, राज्य या समवर्ती सूची में नहीं है (जैसे अंतरिक्ष अनुसंधान, साइबर कानून)।
- **संसदीय संप्रभुता:** ब्रिटेन का सिद्धांत जहाँ संसद सर्वोच्च है; भारत में संसद संविधान के दायरे में संप्रभु है।
- **गणतंत्र:** शासन का वह रूप जहाँ राज्य का प्रमुख सीधे या परोक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित होता है।
- **लोक कल्याणकारी राज्य:** वह शासन व्यवस्था जो केवल सुरक्षा ही नहीं, बल्कि नागरिकों के सामाजिक और आर्थिक उत्थान हेतु उत्तरदायी हो।

9. विश्लेषण

विदेशी स्रोतों की आलोचना प्रायः यह कहकर की जाती है कि यह एक "विदेशी दासता का दस्तावेज" या "अन-इंडियन" है। परंतु, प्रशासनिक दृष्टिकोण से यह आलोचना तर्कहीन है:

- **सार्वभौमिक सत्य:** मानवाधिकार, विधि का शासन और लोकतंत्र जैसे सिद्धांत किसी भौगोलिक सीमा में नहीं बंधे होते।
- **प्रक्रियात्मक सत्य:** भारतीय संविधान के 395 अनुच्छेदों में से अधिकांश 1935 के अधिनियम के माध्यम से भारतीय शासन का हिस्सा बन चुके थे, जो कि भारतीयों के प्रशासनिक अनुभव का परिणाम था।
- **विविधता का एकीकरण:** विभिन्न देशों के श्रेष्ठ तत्वों के समावेश से भारतीय संविधान ने अपनी "रक्षात्मक क्षमता" को बढ़ाया है, जिससे यह पिछले 75 वर्षों से निरंतर गतिक बना हुआ है।

10. अद्यतन सांख्यिकी एवं नवीन विधिक कड़ियाँ

- **अनुच्छेद 368 की गतिकी:** अब तक भारतीय संविधान में **106 से अधिक संशोधन** (अद्यतन 2024-25 के अनुसार) हो चुके हैं, जो दक्षिण अफ्रीका से ली गई संशोधन प्रक्रिया की सफलता को सिद्ध करते हैं।
- **GST परिषद:** यह ऑस्ट्रेलिया और कनाडा के वित्तीय संघवाद का एक आधुनिक और नवीन भारतीय रूपांतरण है।
- **नारी शक्ति वंदन अधिनियम (106वाँ संशोधन):** विधायी सदनों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का विन्यास, जो वैश्विक लोकतांत्रिक मूल्यों का भारतीय संस्करण है।

भारतीय संविधान के विदेशी स्रोत इसके विनिर्माण की वह वैज्ञानिक कड़ि हैं जिसने इसे एक बंद दस्तावेज के स्थान पर एक **'जीवंत विलेख' (Living Document)** बनाया है। इन स्रोतों का भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर जो सूक्ष्म और सटीक अनुकूलन किया गया, उसी का परिणाम है कि भारतीय लोकतंत्र आज वैश्विक स्तर पर एक रोल-मॉडल के रूप में विस्थापित है। यह अध्याय आगामी प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए ऐतिहासिक तथ्यों और वैधानिक अवधारणाओं का आधार प्रस्तुत करता है।

अध्याय 13: भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएं: लिखित, विस्तृत, कठोरता एवं लचीलेपन का संतुलित विन्यास

भारतीय संविधान विश्व का सर्वाधिक व्यापक और विस्तृत वैधानिक विलेख है। यह केवल शासन संचालन के नियमों का समूह नहीं है, अपितु भारत की सामाजिक-आर्थिक आकांक्षाओं और विविध नृवंशविज्ञान कड़ियों को

सूत्रबद्ध करने वाला एक जीवंत दर्शन है। इस अध्याय में संविधान की उन मौलिक विशेषताओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है जो इसे विश्व के अन्य आधुनिक संविधानों से पृथक और अद्वितीय बनाती हैं।

1. विश्व का सबसे विशाल और लिखित विन्यास

संविधानों को सामान्यतः उनके स्वरूप के आधार पर लिखित (जैसे अमेरिका) और अलिखित (जैसे ब्रिटेन) श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। भारत का संविधान न केवल लिखित है, अपितु यह विश्व का **सर्वाधिक विस्तृत (Longest)** संविधान भी है।

1.1 मूल एवं अद्यतन सांख्यिकीय बनावट

26 नवंबर 1949 को जब संविधान अंगीकृत किया गया, तब इसकी संरचना में निम्नलिखित घटक विन्यासित थे:

- प्रस्तावना (Preamble)
- 395 अनुच्छेद (Articles)
- 22 भाग (Parts)
- 8 अनुसूचियां (Schedules)

निरंतर होते संवैधानिक संशोधनों के परिणामस्वरूप वर्तमान में इसका सांख्यिकीय आयतन बढ़कर लगभग निम्नलिखित स्तर पर पहुँच गया है (अद्यतन 2024-25 के अनुसार):

- प्रस्तावना
- लगभग 470+ अनुच्छेद
- 25 भाग
- 12 अनुसूचियां

1.2 विस्तृत होने के विनियामक कारण

भारतीय संविधान के इतने विशाल होने के पीछे चार प्राथमिक भू-वैधानिक कारण उत्तरदायी हैं:

1. **भौगोलिक विस्तार और विविधता:** भारत की विशाल जनसांख्यिकी और क्षेत्रीय विविधताओं के लिए विशिष्ट प्रावधानों (जैसे भाग XXI के विशेष राज्य कपाट) का समावेश।
2. **ऐतिहासिक विरासत:** भारत शासन अधिनियम 1935 का प्रभाव, जो स्वयं में एक अत्यंत विस्तृत वैधानिक दस्तावेज था।
3. **केंद्र और राज्यों का एकल विन्यास:** अमेरिका के विपरीत, भारत में संघ और राज्यों दोनों के लिए एक ही विस्तृत संविधान है।
4. **विस्तृत प्रशासनिक उपबंध:** इसमें केवल मौलिक सिद्धांत ही नहीं, अपितु लोक सेवा आयोग, निर्वाचन आयोग और अंतर-राज्यीय संबंधों जैसे विस्तृत प्रशासनिक विवरण भी विन्यासित हैं।

2. कठोरता एवं लचीलेपन का संतुलित समन्वय (Synthesis of Rigidity and Flexibility)

संविधानों का वर्गीकरण उनकी संशोधन प्रक्रिया के आधार पर भी किया जाता है। एक कठोर संविधान (जैसे अमेरिका) में संशोधन हेतु विशेष और जटिल विधिक प्रक्रिया की आवश्यकता होती है, जबकि लचीले संविधान (जैसे ब्रिटेन) में सामान्य विधायी प्रक्रिया से ही परिवर्तन संभव है।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने इन दोनों ध्रुवों के मध्य एक **'मध्यम मार्ग'** का चयन किया है। अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन की त्रिविध प्रणाली इसका प्रमाण है:

2.1 संशोधन की त्रिविध श्रेणियां

संशोधन का प्रकार	विधिक प्रक्रिया	उदाहरण / विषय वस्तु
साधारण बहुमत द्वारा	संसद के दोनों सदनों में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों का 50% + 1	नए राज्यों का निर्माण (अनुच्छेद 3), नागरिकता, आधिकारिक भाषा।

विशेष बहुमत द्वारा (अनुच्छेद 368)	सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत + उपस्थित व मत देने वालों का 2/3	मौलिक अधिकार, राज्य के नीति निदेशक तत्व।
विशेष बहुमत + आधे राज्यों का समर्थन	अनुच्छेद 368 के तहत संसद का विशेष बहुमत + न्यूनतम 50% राज्यों की विधानसभाओं का विलेख	राष्ट्रपति का निर्वाचन, सातवीं अनुसूची के विषय, GST परिषद।

3. संप्रभुता, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता का दार्शनिक ढांचा

संविधान की प्रस्तावना और इसकी आंतरिक धाराओं में भारत के राज्य के स्वरूप को सुस्पष्ट किया गया है:

- **संप्रभुता (Sovereignty):** भारत किसी भी बाह्य शक्ति के नियंत्रण से विमुक्त है और अपनी आंतरिक व विदेशी नीतियों के निर्धारण हेतु पूर्णतः स्वतंत्र है।
- **समाजवाद (Socialism):** भारत ने 'लोकतांत्रिक समाजवाद' (Democratic Socialism) को अपनाया है, जो मिश्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से गरीबी और अवसर की असमानता को समाप्त करने हेतु प्रतिबद्ध है। (42वें संशोधन 1976 द्वारा शब्द प्रविष्टि)।
- **पंथनिरपेक्षता (Secularism):** भारतीय धर्मनिरपेक्षता का अर्थ 'धर्म और राज्य का पूर्ण विच्छेद' नहीं, अपितु 'सर्व धर्म समभाव' है। राज्य का अपना कोई राजकीय धर्म नहीं है और वह सभी धर्मों को समान विधिक संरक्षण प्रदान करता है।

4. संसदीय शासन प्रणाली और वेस्टमिंस्टर मॉडल

भारत ने अमेरिका की अध्यक्षीय प्रणाली के स्थान पर ब्रिटेन के 'वेस्टमिंस्टर मॉडल' को विधिक रूप से स्वीकार किया है। यह प्रणाली कार्यपालिका और विधायिका के मध्य 'समन्वय और सहयोग' के सिद्धांत पर आधारित है।

4.1 संसदीय प्रणाली के मुख्य विनियामक लक्षण

- **दोहरी कार्यपालिका:** नाममात्र का प्रधान (राष्ट्रपति) और वास्तविक प्रधान (प्रधानमंत्री)।
- **बहुमत दल का शासन:** लोकसभा में बहुमत प्राप्त दल द्वारा मंत्रिपरिषद का गठन।
- **सामूहिक उत्तरदायित्व:** अनुच्छेद 75(3) के तहत मंत्रिपरिषद का सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति जवाबदेह होना।
- **संसदीय संप्रभुता और न्यायिक सर्वोच्चता का संश्लेषण:** भारत में ब्रिटिश संसद की तरह पूर्ण संप्रभुता नहीं है, और न ही अमेरिकी न्यायपालिका की तरह पूर्ण निरंकुशता। यहाँ संसद को संविधान संशोधन का अधिकार है, जबकि न्यायपालिका को 'न्यायिक पुनरावलोकन' (Judicial Review) के माध्यम से संविधान की रक्षा का विधिक अधिकार प्राप्त है।

5. एकात्मक झुकाव के साथ संघीय ढांचा (Federal System with Unitary Bias)

भारतीय संविधान एक संघीय व्यवस्था की स्थापना करता है (शक्तियों का विभाजन, लिखित संविधान, स्वतंत्र न्यायपालिका), परंतु इसमें कुछ ऐसे लक्षण विन्यासित हैं जो संकटकाल में इसे 'एकात्मक' स्वरूप प्रदान करते हैं:

- **सशक्त केंद्र:** संघ सूची में अधिक महत्वपूर्ण और सांख्यिकीय रूप से अधिक विषय।
- **एकल नागरिकता:** राज्यों की पृथक नागरिकता का अभाव।
- **राज्यपाल की नियुक्ति:** केंद्र के प्रतिनिधि के रूप में राज्यों में राज्यपाल का पद आर्डर।
- **अखिल भारतीय सेवाएँ (IAS, IPS):** केंद्र द्वारा नियुक्त लेकिन राज्यों में कार्यरत।
- **आपातकालीन प्रावधान:** अनुच्छेद 352, 356 और 360 के तहत शक्तियों का केंद्रीकरण।

विशेषज्ञ टिप्पणी: प्रख्यात राजनीति शास्त्री के.सी. व्हीयर ने इसी कारण भारतीय संविधान को 'अर्ध-संघात्मक' (Quasi-Federal) की संज्ञा दी है।

6. मौलिक अधिकार और विधिक उपचारों का कपाट

संविधान के भाग III (अनुच्छेद 12-35) के तहत नागरिकों को छह मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। ये अधिकार राज्य की कार्यपालिका और विधायिका की निरंकुशता पर विधिक सीमाएँ आरोपित करते हैं।

- **वादयोग्य प्रकृति (Justiciable):** यदि किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों का हनन होता है, तो वह अनुच्छेद 32 (संवैधानिक उपचारों का अधिकार) के तहत सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है।
- **सीमित संप्रभुता:** ये अधिकार असीमित नहीं हैं। इन पर 'युक्तिसंगत निर्बंधन' (Reasonable Restrictions) लगाए जा सकते हैं।

7. राज्य के नीति निदेशक तत्व (DPSP) और लोक कल्याणकारी राज्य

भाग IV (अनुच्छेद 36-51) में नीति निदेशक तत्वों का विन्यास किया गया है।

- **उद्देश्य:** सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना।
- **प्रकृति:** ये न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय (Non-justiciable) नहीं हैं, परंतु देश के शासन में 'मूलभूत' (Fundamental in the governance) माने गए हैं।
- **मिनर्वा मिल्स वाद (1980):** सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मौलिक अधिकार और नीति निदेशक तत्वों के मध्य 'संतुलन' ही संविधान की वास्तविक आधारशिला है।

8. स्वतंत्र और एकीकृत न्यायपालिका (Independent and Integrated Judiciary)

भारत में न्यायपालिका का स्वरूप त्रि-स्तरीय और एकीकृत है:

1. शीर्ष पर **सर्वोच्च न्यायालय** (अंतिम अपील न्यायालय)।
2. मध्य स्तर पर **उच्च न्यायालय**।
3. निम्न स्तर पर **अधीनस्थ न्यायालय** (जिला न्यायालय)।

विशिष्टता: अमेरिका में संघीय कानून हेतु संघीय न्यायपालिका और राज्य कानून हेतु राज्य न्यायपालिका है, लेकिन भारत में एक ही न्यायिक कड़ी दोनों प्रकार के कानूनों को विधिक रूप से लागू करती है।

9. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और नागरिकता

- **वयस्क मताधिकार:** जाति, धर्म, लिंग या साक्षरता के भेदभाव के बिना प्रत्येक नागरिक को मत देने का अधिकार। 61वें संविधान संशोधन 1989 द्वारा मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष की गई।
- **एकल नागरिकता:** संपूर्ण भारत के लिए केवल एक ही नागरिकता का विन्यास है, जो क्षेत्रीय संकीर्णताओं के स्थान पर राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करती है।

10. आपातकालीन प्रावधान और विनियामक गतिकी

संविधान के भाग XVIII में तीन प्रकार के आपातकालों का विवरण है:

1. **राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352):** युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह की स्थिति में।
2. **राजकीय आपातकाल / राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356):** राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता पर।
3. **वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360):** देश की वित्तीय स्थिरता को खतरा होने पर।

महत्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **मूल ढांचा (Basic Structure):** केशवानंद भारती वाद (1973) द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत, जिसके अनुसार संसद संविधान के उन मौलिक अंगों को नहीं बदल सकती जो इसकी आत्मा हैं।
- **न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review):** न्यायपालिका की वह शक्ति जिसके द्वारा वह विधायी अधिनियमों की संवैधानिक वैधता की जाँच करती है।
- **गणतंत्र (Republic):** शासन का वह रूप जहाँ राष्ट्र का प्रमुख (राष्ट्रपति) वंशानुगत न होकर निर्वाचित होता है।

- **विधि का शासन (Rule of Law):** अनुच्छेद 14 का मूलाधार, जहाँ कानून सर्वोपरि है और कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है।

तालिका: मुख्य संवैधानिक परिवर्तन

विशेषता	मूल संविधान (1950)	वर्तमान स्थिति (2024-25)	प्रमुख विनियामक परिवर्तन
अनुसूचियां	8	12	9वीं (1951), 10वीं (1985), 11वीं व 12वीं (1992) में जोड़ी गई।
भाग	22	25	भाग 4A, 9A, 9B, 14A जोड़े गए; भाग VII निरस्त।
मतदान आयु	21 वर्ष	18 वर्ष	61वां संशोधन 1989।
संपत्ति का अधिकार	मौलिक अधिकार	विधिक अधिकार	44वां संशोधन 1978 (अनुच्छेद 300A)।

निष्कर्ष एवं प्रशासनिक दृष्टिकोण

भारतीय संविधान की विशेषताएं इसे एक 'जीवंत विलेख' (Living Document) बनाती हैं। इसमें विद्यमान 'कठोरता और लचीलेपन का समन्वय' ही वह कारक है जिसने इसे पिछले सात दशकों के राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद अक्षुण्ण बनाए रखा है। यह संविधान एक ओर व्यक्तिगत स्वतंत्रता (मौलिक अधिकार) की रक्षा करता है, तो दूसरी ओर सामाजिक न्याय (नीति निर्देशक तत्व) के माध्यम से देश के सतत प्रादेशिक विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। प्रशासनिक अधिकारियों के लिए इन विशेषताओं का बोध केवल सैद्धांतिक नहीं, अपितु विधिक संप्रभुता और शासन संचालन की सूक्ष्म बारीकियों को समझने हेतु अनिवार्य है।

अध्याय 14: भारतीय संविधान की प्रस्तावना: संप्रभुता, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, लोकतंत्र और गणराज्य के दार्शनिक आयाम

भारतीय संविधान की प्रस्तावना केवल एक औपचारिक परिचयात्मक वक्तव्य नहीं है, बल्कि यह वह 'संवैधानिक विलेख' है जो संविधान के दर्शन, उसके मूल उद्देश्यों और शासन प्रणाली के वैधानिक आधार को परिलक्षित करता है। प्रख्यात विधिवेत्ता एन.ए. पालकीवाला ने इसे 'संविधान का परिचय पत्र' कहा है। यह अध्याय प्रस्तावना के भीतर समाहित उन पाँच प्रमुख दार्शनिक स्तंभों का सूक्ष्म विश्लेषण करता है जो भारत की राजव्यवस्था को परिभाषित करते हैं।

1. प्रस्तावना का ऐतिहासिक और वैधानिक मूलाधार

भारतीय संविधान की प्रस्तावना का वैधानिक आधार पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा **13 दिसंबर 1946** को संविधान सभा में प्रस्तुत किया गया **'उद्देश्य प्रस्ताव' (Objective Resolution)** है। इसे 22 जनवरी 1947 को सभा द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया था। प्रस्तावना को संविधान के अंत में विधिक रूप से अंगीकृत किया गया ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि यह संविधान के अन्य प्रावधानों के साथ पूर्णतः संरेखित है।

सारणी 14.1: प्रस्तावना के मुख्य अंग और उनका विन्यास

घटक	विनिर्दिष्ट विवरणी
सत्ता का स्रोत	भारत की जनता ("हम भारत के लोग")
राज्य की प्रकृति	संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य
संविधान के उद्देश्य	न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व
अंगीकरण की तिथि	26 नवंबर 1949 (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी)

2. "संप्रभुता" (Sovereignty) का विनियामक आयाम

प्रस्तावना में प्रयुक्त प्रथम दार्शनिक शब्द 'संप्रभु' भारत की स्वतंत्र विधिक स्थिति को घोषित करता है। इसका अर्थ है कि भारत न तो किसी अन्य देश पर निर्भर है और न ही किसी अन्य शक्ति का डोमिनियन है।

- **आंतरिक संप्रभुता:** भारत अपने भौगोलिक क्षेत्राधिकार के भीतर किसी भी विषय पर कानून बनाने और उसे लागू करने हेतु पूर्णतः स्वतंत्र है।
- **बाह्य संप्रभुता:** भारत अपनी विदेश नीति के निर्धारण, अंतरराष्ट्रीय संधियों के संपादन और किसी विदेशी भूभाग को अधिगृहीत करने या अपने भूभाग का हिस्सा किसी अन्य को सौंपने की वैधानिक शक्ति रखता है।
- **विनियामक स्पष्टीकरण:** संयुक्त राष्ट्र (UN) या राष्ट्रमंडल (Commonwealth) की सदस्यता भारत की संप्रभुता को विधिक रूप से सीमित नहीं करती है। यह केवल एक ऐच्छिक और प्रशासनिक कड़ि है।

3. "समाजवाद" (Socialism) का भारतीय प्रतिरूप

'समाजवादी' शब्द मूल संविधान में विद्यमान नहीं था। इसे **42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976** द्वारा प्रस्तावना में अंतःस्थापित किया गया। भारत ने मार्क्सवादी समाजवाद के स्थान पर **'लोकतांत्रिक समाजवाद' (Democratic Socialism)** को अंगीकार किया है।

- **मिश्रित अर्थव्यवस्था:** भारतीय समाजवाद सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के सह-अस्तित्व पर आधारित है।
- **उद्देश्य:** सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, भारतीय समाजवाद का मुख्य लक्ष्य गरीबी, उपेक्षा, बीमारी और अवसर की असमानता को समाप्त करना है।
- **गांधीवादी और मार्क्सवादी समन्वय:** भारत का समाजवादी विन्यास गांधीवाद की ओर झुका हुआ एक अनूठा विधिक संस्तर है। वर्ष 1991 की नई आर्थिक नीति (LPG) ने समाजवाद के इस विन्यास को लचीला बनाया है, परंतु इसका दार्शनिक आधार अभी भी लोक कल्याणकारी बना हुआ है।

4. "पंथनिरपेक्षता" (Secularism) का वैधानिक विन्यास

'पंथनिरपेक्ष' शब्द भी 42वें संशोधन 1976 द्वारा जोड़ा गया। पाश्चात्य धर्मनिरपेक्षता (धर्म और राज्य का पूर्ण विच्छेद) के विपरीत, भारत ने 'सकारात्मक पंथनिरपेक्षता' के मॉडल को अपनाया है।

- **राज्य का स्वरूप:** राज्य का अपना कोई आधिकारिक धर्म (State Religion) नहीं है।
- **समान संरक्षण:** राज्य सभी धर्मों को समान आदर और विधिक संरक्षण प्रदान करता है।
- **अनुच्छेद कड़ि:** संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 (धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार) प्रस्तावना के इस दार्शनिक स्तंभ को वास्तविक विधिक शक्ति प्रदान करते हैं।
- **एस.आर. बोम्मई वाद (1994):** सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया कि पंथनिरपेक्षता संविधान का 'मूल ढांचा' (Basic Structure) है।

5. "लोकतंत्र" (Democracy) के प्रशासनिक आयाम

प्रस्तावना 'लोकतंत्रात्मक' शासन व्यवस्था की परिकल्पना करती है, जो जनता की संप्रभुता पर आधारित है। भारत में 'अप्रत्यक्ष लोकतंत्र' के अंतर्गत 'संसदीय लोकतंत्र' को विस्थापित किया गया है।

- **प्रतिनिधित्व कड़ि:** कार्यपालिका अपनी सभी नीतियों और कार्यों के लिए विधायिका (जनता के प्रतिनिधियों) के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है।
- **त्रि-स्तरीय लोकतंत्र:** भारत में केवल राजनीतिक लोकतंत्र ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना का भी लक्ष्य रखा गया है।
- **महत्वपूर्ण लक्षण:** सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, नियतकालिक चुनाव, विधि का शासन और न्यायपालिका की स्वतंत्रता लोकतंत्र के विनियामक स्तंभ हैं।

6. "गणराज्य" (Republic) का दार्शनिक कूट

एक लोकतांत्रिक राज्यव्यवस्था को दो श्रेणियों—राजशाही और गणराज्य—में विभाजित किया जा सकता है। भारत एक गणराज्य है, जिसका अर्थ निम्नलिखित दो विधिक तथ्यों से सुस्पष्ट होता है:

1. **निर्वाचित राष्ट्राध्यक्ष:** भारत का राज्य प्रमुख (राष्ट्रपति) हमेशा एक निश्चित अवधि के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित होता है। यहाँ ब्रिटेन की तरह वंशानुगत शासन (Hereditary Rule) का पूर्ण अभाव है।
2. **विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग की अनुपस्थिति:** राजनीतिक संप्रभुता किसी एक व्यक्ति (राजा) के हाथ में होने के स्थान पर भारत की जनता में निहित है। सार्वजनिक पद बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक नागरिक के लिए खुले हैं।

7. प्रस्तावना के उद्देश्यों का त्रिविध विन्यास

प्रस्तावना न केवल शासन के स्वरूप को बताती है, बल्कि उन लक्ष्यों को भी निर्धारित करती है जिन्हें राज्य को प्राप्त करना है।

7.1 न्याय (Justice)

प्रस्तावना तीन प्रकार के न्याय की बात करती है:

- **सामाजिक न्याय:** जाति, धर्म, लिंग के आधार पर भेदभाव का अंत।
- **आर्थिक न्याय:** संपदा और आय की असमानता को कम करना।
- **राजनीतिक न्याय:** प्रत्येक नागरिक को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त होना।
- (इन आदर्शों को 1917 की रूसी क्रांति से लिया गया है।)

7.2 स्वतंत्रता (Liberty)

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता। यह स्वतंत्रता असीमित नहीं है, बल्कि संविधान द्वारा निर्धारित 'युक्तिसंगत निर्बंधनों' के अधीन है।

7.3 समता (Equality)

प्रतिष्ठा और अवसर की समता। अनुच्छेद 14 से 18 समता के इस दार्शनिक आदर्श को विधिक रूप प्रदान करते हैं।

8. प्रस्तावना की विधिक स्थिति: ऐतिहासिक वाद

प्रस्तावना संविधान का अंग है या नहीं, इस पर न्यायिक दृष्टिकोण समय के साथ विकसित हुआ है:

सारणी 14.2: प्रस्तावना संबंधी ऐतिहासिक न्यायिक निर्णय

ऐतिहासिक वाद	वर्ष	सर्वोच्च न्यायालय का विनियामक निर्णय
बेरुबाड़ी संघ वाद	1960	प्रस्तावना संविधान का हिस्सा नहीं है। यह केवल निर्माताओं के मन की कुंजी है।
केशवानंद भारती वाद	1973	प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है। इसमें संशोधन किया जा सकता है।
एल.आई.सी. ऑफ इंडिया वाद	1995	प्रस्तावना संविधान का आंतरिक हिस्सा है।

9. संशोधन की वैधानिक संप्रभुता

क्या अनुच्छेद 368 के तहत प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है?

- **केशवानंद भारती वाद (1973)** के बाद यह स्पष्ट हुआ कि प्रस्तावना में संशोधन संभव है, बशर्ते इसके 'मूल ढांचे' (**Basic Structure**) के साथ कोई छेड़छाड़ न की जाए।
- **इतिहास:** अब तक प्रस्तावना में केवल **एक बार** (42वें संशोधन 1976 द्वारा) संशोधन किया गया है, जिसके माध्यम से तीन नए शब्द—**समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखंडता**—जोड़े गए।

10. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **लोकतांत्रिक समाजवाद:** वह प्रणाली जहाँ उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक और निजी दोनों का नियंत्रण होता है और लक्ष्य लोक कल्याण होता है।
- **पंथनिरपेक्षता (भारतीय कूट):** 'सर्व धर्म समभाव' का वैधानिक सिद्धांत।
- **गणराज्य:** वह राज्य जहाँ सर्वोच्च पद वंशानुगत नहीं बल्कि निर्वाचित होता है।
- **बंधुत्व:** नागरिकों के बीच भाईचारे की भावना और व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता-अखंडता सुनिश्चित करना।
- **मेटासोमैटिक विनियामक रूपांतरण:** विदेशी दार्शनिक आदर्शों का भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप किया गया वैधानिक ढाल।

11. सांख्यिकीय और तथ्यात्मक विशिष्टताएं

- प्रस्तावना की भाषा पर **ऑस्ट्रेलिया** के संविधान का प्रभाव है, जबकि 'हम भारत के लोग' की शब्दावली **संयुक्त राज्य अमेरिका** (UN चार्टर के सदृश) से प्रेरित है।
- स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के आदर्श **फ्रांसीसी क्रांति (1789)** से लिए गए हैं।
- के.एम. मुंशी ने प्रस्तावना को '**हमारी संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य की जन्मकुंडली**' कहा है।
- ठाकुर दास भार्गव के अनुसार, प्रस्तावना '**संविधान का सबसे सम्मानित भाग और उसकी आत्मा**' है।

अध्याय 15: प्रस्तावना की विधिक प्रासंगिकता: बेरुबाड़ी संघ (1960) बनाम केशवानंद भारती वाद (1973) का विवर्तनिक विन्यास

भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble) की वैधानिक स्थिति और उसकी विधिक प्रासंगिकता न्यायपालिका के इतिहास में सबसे गहन विमर्श का विषय रही है। प्रस्तावना संविधान की आत्मा है या मात्र एक परिचय पत्र, क्या इसमें अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन संभव है, और क्या इसे आधार बनाकर कानूनों की व्याख्या की जा सकती है—इन प्रश्नों का उत्तर दो ऐतिहासिक विधिक मील के पथरों के माध्यम से समझा जा सकता है। बेरुबाड़ी संघ (1960) से केशवानंद भारती (1973) तक की यात्रा भारतीय संवैधानिक दर्शन का 'मेटासोमैटिक विनियामक रूपांतरण' है।

1. प्रस्तावना की विधिक प्रकृति: प्रारंभिक संस्तर

संवैधानिक विधि के अनुसार, प्रस्तावना उन महान उद्देश्यों और सिद्धांतों को संहिताबद्ध करती है जिन्हें संविधान निर्माता प्राप्त करना चाहते थे। यद्यपि इसे संविधान सभा द्वारा संविधान के अंत में अंगीकृत किया गया था ताकि यह शेष अनुच्छेदों के साथ विधिक रूप से संरेखित रहे, परंतु इसकी प्रवर्तनीयता (Enforceability) को लेकर प्रारंभिक काल में न्यायालयों का दृष्टिकोण संकुचित था।

- **संविधान निर्माताओं के मन की कुंजी:** प्रस्तावना को विधिक रूप से संविधान के स्पष्ट प्रावधानों के अर्थ को स्पष्ट करने वाली एक 'व्याख्यात्मक कुंजी' (Key to the minds of makers) माना गया।
- **गैर-न्यायसंगत प्रकृति:** प्रस्तावना स्वयं में अधिकारों का स्रोत नहीं है और न ही यह कार्यपालिका या विधायिका की शक्तियों पर कोई विधिक निषेध आरोपित करती है।

2. बेरुबाड़ी संघ वाद (1960): संकीर्ण विधिक दृष्टिकोण

वर्ष 1958 के नेहरू-नून समझौते के तहत भारत और पाकिस्तान के बीच सीमा विवाद सुलझाने हेतु 'बेरुबाड़ी संघ' (पश्चिम बंगाल का एक क्षेत्र) को पाकिस्तान को हस्तांतरित किया जाना तय हुआ था। इस संदर्भ में राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 143 के तहत सर्वोच्च न्यायालय से विधिक राय मांगी।

2.1 न्यायालय का विनियामक निर्णय

8 न्यायाधीशों की पीठ ने प्रस्तावना के संबंध में निम्नलिखित दो अत्यंत महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रतिपादित किए:

1. **संविधान का अंग नहीं:** न्यायालय ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि **"प्रस्तावना संविधान का हिस्सा (Part) नहीं है।"** यह केवल संविधान के उद्देश्यों को जानने का एक विधिक साधन मात्र है।
2. **व्याख्या में सहायक:** प्रस्तावना का उपयोग केवल तभी किया जा सकता है जब संविधान के किसी अनुच्छेद की भाषा संदिग्ध या द्विअर्थी हो। जहाँ शब्द स्पष्ट हैं, वहाँ प्रस्तावना का कोई विधिक प्रभाव नहीं होगा।

2.2 विधिक निहितार्थ

चूँकि बेरुबाड़ी वाद में प्रस्तावना को संविधान का अंग नहीं माना गया, अतः तत्कालीन विधिक समझ यह थी कि अनुच्छेद 368 की संशोधनकारी शक्ति प्रस्तावना तक विस्तृत नहीं है।

3. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973): विवर्तनिक विस्थापन

यह भारतीय न्यायिक इतिहास का सबसे विशाल वाद था, जिसकी सुनवाई 13 न्यायाधीशों की सबसे बड़ी पीठ द्वारा की गई। इस वाद ने न केवल प्रस्तावना की स्थिति को बदला, बल्कि 'मूल ढांचे' (Basic Structure) के सिद्धांत को जन्म दिया।

3.1 ऐतिहासिक विधिक विन्यास

सर्वोच्च न्यायालय ने बेरुबाड़ी वाद के अपने पूर्ववर्ती निर्णय को उलटते हुए निम्नलिखित युगांतरकारी सिद्धांतों की स्थापना की:

1. **संविधान का अभिन्न अंग:** न्यायालय ने आधिकारिक रूप से स्वीकार किया कि **"प्रस्तावना संविधान का एक अभिन्न अंग है।"** इसे संविधान के अन्य प्रावधानों की तरह ही संविधान सभा द्वारा पारित किया गया था।
2. **अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन:** चूँकि प्रस्तावना संविधान का अंग है, अतः संसद अनुच्छेद 368 के तहत इसमें संशोधन कर सकती है।

3. **मूल ढांचे की सीमा:** संसद प्रस्तावना में ऐसा कोई संशोधन नहीं कर सकती जो संविधान के 'मूल ढांचे' (Basic Structure) को विखंडित या नष्ट करता हो।

3.2 प्रस्तावना का सर्वोच्च महत्व

मुख्य न्यायाधीश एस.एम. सीकरी ने कहा कि संविधान का अर्थ और उसकी व्याख्या प्रस्तावना में व्यक्त 'महान उद्देश्यों' के आलोक में ही की जानी चाहिए। प्रस्तावना संविधान की संरचनात्मक आधारशिला है।

4. तुलनात्मक विश्लेषण तालिका: बेरुबाड़ी बनाम केशवानंद भारती

विनियामक आयाम	बेरुबाड़ी संघ वाद (1960)	केशवानंद भारती वाद (1973)
संविधान में स्थिति	प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है।	प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है।
संशोधन की शक्ति	स्थिति अस्पष्ट थी (अंग न होने के कारण)।	अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन संभव है।
न्यायिक प्रवर्तन	केवल संदिग्ध भाषा की व्याख्या हेतु।	संविधान के मूल ढांचे का मार्गदर्शक विलेख।
पीठ की सांख्यिकी	8 न्यायाधीशों की पीठ।	13 न्यायाधीशों की सबसे बड़ी पीठ।
निर्णय का प्रभाव	संकुचित विधिक दृष्टिकोण।	व्यापक संवैधानिक दर्शन का उदय।

5. मूल ढांचे का सिद्धांत और प्रस्तावना की रक्षात्मक भूमिका

केशवानंद भारती वाद के बाद, प्रस्तावना संविधान के 'मूल ढांचे' का एक विधिक सूचकांक बन गई। न्यायपालिका ने स्पष्ट किया कि प्रस्तावना में निहित कुछ शब्द मूल ढांचे का हिस्सा हैं:

- **संप्रभुता और लोकतंत्र:** इन्हें कभी भी विधायी संशोधन द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता।
- **पंथनिरपेक्षता और न्याय:** एस.आर. बोम्मई वाद (1994) में पंथनिरपेक्षता को मूल ढांचा घोषित किया गया, जिसका बीज प्रस्तावना में निहित है।
- **व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की अखंडता:** ये शब्द भारत की संघीय एकता के विनियामक रक्षक हैं।

6. 42वाँ संविधान संशोधन 1976: एकमात्र विधिक संशोधन

केशवानंद भारती वाद में प्राप्त विधिक शक्ति का प्रयोग करते हुए, संसद ने अब तक प्रस्तावना में केवल एक बार संशोधन किया है।

6.1 सांख्यिकीय एवं शाब्दिक परिवर्तन

इस संशोधन द्वारा प्रस्तावना में तीन नए शब्दों का समावेश किया गया:

1. **समाजवादी (Socialist)**
2. **पंथनिरपेक्ष (Secular)**
3. **अखंडता (Integrity)** - "राष्ट्र की एकता" के स्थान पर "राष्ट्र की एकता और अखंडता" विस्थापित किया गया।

6.2 विधिक प्रभाव

इन शब्दों के समावेश ने भारत के लोक कल्याणकारी और धर्मनिरपेक्ष चरित्र को विधिक रूप से और अधिक सुस्पष्ट और अभेद्य बना दिया।

7. प्रस्तावना संबंधी अन्य महत्वपूर्ण न्यायिक वाद

प्रस्तावना की विधिक गतिकी को समझने के लिए निम्नलिखित बाद की कड़ियाँ भी महत्वपूर्ण हैं:

- **गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967):** न्यायमूर्ति सुब्बाराव ने प्रस्तावना को संविधान की आत्मा और उसके शाश्वत सिद्धांतों का निचोड़ बताया था।
- **एल.आई.सी. ऑफ इंडिया वाद (1995):** सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः पुष्टि की कि **"प्रस्तावना संविधान का आंतरिक हिस्सा (Integral Part) है।"**
- **एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994):** प्रस्तावना में निहित धर्मनिरपेक्षता के दर्शन को शासन के विनियामक मूलाधार के रूप में विस्थापित किया गया।

8. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **मूल ढांचा (Basic Structure):** संविधान के वे अनिवार्य लक्षण जिन्हें संसद की संशोधनकारी शक्ति द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता।
- **मेटासोमैटिक विस्थापन:** विधिक निर्णयों के माध्यम से पुरानी संवैधानिक व्याख्याओं का नवीन और प्रगतिशील व्याख्याओं द्वारा प्रतिस्थापन।
- **व्याख्यात्मक कुंजी:** विधिक प्रावधानों के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु प्रयुक्त दार्शनिक मार्गदर्शिका।
- **संविधान का अंग:** वह वैधानिक स्थिति जो किसी विलेख को अनुच्छेद 368 की शक्ति के भीतर लाती है।
- **नॉन-जस्टिसिएबल (गैर-वादयोग्य):** वह प्रावधान जिसे आधार बनाकर सीधे न्यायालय में मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता, परंतु जो कानूनों की व्याख्या में सहायक हो।

9. प्रस्तावना का प्रशासनिक एवं विधायी प्रभाव प्रतिरूप

प्रशासनिक अधिकारियों और विधायी निकायों के लिए प्रस्तावना एक **'नियामक प्रकाशस्तंभ'** की तरह कार्य करती है:

1. **नीति निर्माण का आधार:** सरकार की कोई भी योजना (जैसे जन धन योजना या आयुष्मान भारत) प्रस्तावना में निहित 'आर्थिक न्याय' और 'अवसर की समता' के सिद्धांतों का ही व्यावहारिक क्रियान्वयन है।
2. **विधिक सुसंगति:** जब किसी कानून की वैधता पर प्रश्न उठता है, तो न्यायालय यह देखता है कि वह प्रस्तावना के आदर्शों के विरुद्ध तो नहीं है।
3. **राजकोषीय संघवाद:** प्रस्तावना में प्रयुक्त 'अखंडता' शब्द केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय और प्रशासनिक संतुलन को विधिक स्थायित्व प्रदान करता है।

10. महत्वपूर्ण तथ्य तालिका

ऐतिहासिक तथ्य	विवरण
प्रस्तावना का आधार	नेहरू का उद्देश्य प्रस्ताव (13 दिसंबर 1946)
संशोधन की संख्या	केवल 1 बार (42वाँ संशोधन 1976)
प्रस्तावना में प्रयुक्त न्याय	सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक (त्रिविध कड़ि)
प्रस्तावना में प्रयुक्त स्वतंत्रता	विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना (पंचविध कड़ि)

संवत उल्लेख	संवत दो हजार छह विक्रमी (26 नवंबर 1949)
-------------	---

निष्कर्ष:

प्रस्तावना की विधिक प्रासंगिकता का विकास यह सिद्ध करता है कि यह संविधान का निर्जीव मुखौटा नहीं, बल्कि एक **'जीवंत विलेख'** है। जहाँ बेरुबाड़ी वाद ने इसे बाहरी आवरण माना, वहीं केशवानंद भारती वाद ने इसे संविधान का हृदय और मस्तिष्क बना दिया। वर्तमान में यह स्थापित विधिक सत्य है कि:

- प्रस्तावना संविधान का भाग है।
- इसमें संशोधन संभव है, बशर्ते मूल ढांचे का हास न हो।
- यह शासन के लोक कल्याणकारी और लोकतांत्रिक चरित्र की सर्वोच्च रक्षक है।

यह अध्याय आगामी परीक्षाओं के लिए न्यायिक निर्णयों के सूक्ष्म अंतर और प्रस्तावना की दार्शनिक गहराई को समझने हेतु एक सुदृढ़ विन्यास प्रदान करता है।

अध्याय 16: मौलिक अधिकार (भाग III): समानता और स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 22)

भारतीय संविधान का भाग III नागरिक अधिकारों का 'मैग्राकार्टा' कहलाता है। इसमें सन्निहित मौलिक अधिकार राज्य की विधायी और कार्यपालिका शक्तियों पर विधिक सीमाएँ आरोपित करते हैं। अनुच्छेद 14 से 22 तक का संस्तर विशेष रूप से 'समानता' और 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' के वैधानिक सिद्धांतों को प्रतिपादित करता है, जो किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला हैं।

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18): विधिक एवं सामाजिक आयाम

समानता का अधिकार भारतीय लोकतंत्र का आधारभूत ढांचा (Basic Structure) है। यह न केवल विधि के समक्ष समानता सुनिश्चित करता है, बल्कि ऐतिहासिक सामाजिक भेदभावों के शमन हेतु सकारात्मक विभेद (Positive Discrimination) का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

1.1 अनुच्छेद 14: विधि के समक्ष समता एवं विधि का समान संरक्षण

यह अनुच्छेद स्पष्ट करता है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

- **विधि के समक्ष समता (Equality before Law):** यह ब्रिटिश मूल की नकारात्मक अवधारणा है, जिसका अर्थ है कि कानून की नजर में कोई भी व्यक्ति विशिष्ट नहीं है।
- **विधियों का समान संरक्षण (Equal Protection of Laws):** यह अमेरिकी मूल की सकारात्मक अवधारणा है, जिसका अर्थ है कि समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों के साथ समान कानून लागू होगा।
- **अद्यतन विधिक स्थिति:** सर्वोच्च न्यायालय ने 'ई.पी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य' वाद में प्रतिपादित किया कि समानता एक गतिशील अवधारणा है और यह 'मनमानेपन' (Arbitrariness) के विरुद्ध है।

1.2 अनुच्छेद 15: भेदभाव का निषेध एवं सकारात्मक विभेद

राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

- **15(3):** महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष विधिक प्रावधान करने की शक्ति।
- **15(4) व 15(5):** सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों (OBC) तथा SC/ST के लिए शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण।
- **15(6) - 103वाँ संशोधन:** आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) के लिए शिक्षण संस्थानों में 10% आरक्षण का विन्यास।

1.3 अनुच्छेद 16: लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता

राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।

- **मंडल आयोग वाद (इन्द्रा साहनी बनाम भारत संघ):** सर्वोच्च न्यायालय ने पिछड़ा वर्ग आरक्षण को वैध माना लेकिन 50% की सीमा और 'क्रीमी लेयर' का सिद्धांत प्रतिपादित किया।
- **16(4-A) व 16(4-B):** पदोन्नति में आरक्षण और बैकलॉग सीटों के विन्यास से संबंधित।
- **16(6):** EWS वर्ग हेतु सरकारी नौकरियों में 10% आरक्षण।

1.4 अनुच्छेद 17 व 18: सामाजिक वर्जनाओं का अंत

- **अनुच्छेद 17 (अस्पृश्यता का अंत):** यह एक निरपेक्ष अधिकार है। इसके कार्यान्वयन हेतु 'सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955' और 'SC/ST अत्याचार निवारण अधिनियम, 1989' विनिर्मित किए गए हैं।
- **अनुच्छेद 18 (उपाधियों का अंत):** राज्य सेना या विद्या संबंधी सम्मान के अतिरिक्त कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा। 'बालाजी राघवन वाद' में भारत रत्न, पद्म विभूषण आदि को 'सम्मान' माना गया, न कि 'उपाधि'।

2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22): वैधानिक गतिकी

स्वतंत्रता का अधिकार नागरिक जीवन की गरिमा सुनिश्चित करता है। अनुच्छेद 19 से 22 तक का संस्तर न केवल अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है, बल्कि जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अभेद्य सुरक्षा प्रदान करता है।

2.1 अनुच्छेद 19: छह लोकतांत्रिक स्वतंत्रताओं का विन्यास

मूल संविधान में 7 स्वतंत्रताएं थीं, परंतु 44वें संशोधन (1978) द्वारा 'संपत्ति के अधिकार' को हटा दिया गया। वर्तमान में अनुच्छेद 19(1) के तहत निम्नलिखित छह अधिकार प्राप्त हैं:

1. **भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता:** इसमें प्रेस की स्वतंत्रता, व्यावसायिक विज्ञापन का अधिकार और 'मौन रहने का अधिकार' भी विधिक रूप से शामिल है।
2. **शांतिपूर्ण सम्मेलन का अधिकार:** बिना हथियारों के एकत्र होने की स्वतंत्रता।
3. **संगम या संघ बनाने का अधिकार:** इसमें 'सहकारी समितियां' (97वाँ संशोधन) भी शामिल हैं।
4. **भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र संचरण का अधिकार।**
5. **निवास करने और बस जाने का अधिकार।**
6. **कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार।**

सीमाएँ: ये अधिकार असीमित नहीं हैं। अनुच्छेद 19(2) से 19(6) तक राज्य को 'युक्तिसंगत निर्बंधन' (Reasonable Restrictions) लगाने की शक्ति प्रदान करते हैं (यथा- देश की संप्रभुता, अखंडता, सुरक्षा, लोक व्यवस्था)।

2.2 अनुच्छेद 20: अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण

यह अनुच्छेद अभियुक्तों को तीन प्रकार की विधिक सुरक्षा प्रदान करता है:

- **कार्योत्तर विधि से संरक्षण (Ex-post-facto Law):** किसी व्यक्ति को तब तक दोषी नहीं माना जाएगा जब तक उसने किसी प्रवर्तमान विधि का उल्लंघन न किया हो।
- **दोहरे दंड से मुक्ति (Double Jeopardy):** एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार दंडित नहीं किया जाएगा।

- **आत्म-अभिशंसन से संरक्षण (Prohibition against Self-incrimination):** किसी व्यक्ति को स्वयं के विरुद्ध गवाह बनने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा (सेलवी वाद में 'नार्को टेस्ट' और 'पॉलीग्राफ' को इसके उल्लंघन के रूप में देखा गया)।

2.3 अनुच्छेद 21: प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण

"किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से **विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया** के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।"

- **मेनका गांधी वाद (1978):** सर्वोच्च न्यायालय ने 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' की व्याख्या 'विधि की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) के रूप में की। न्यायालय ने कहा कि प्रक्रिया 'उचित, न्यायपूर्ण और अयुक्तिसंगत' होनी चाहिए।
- **विस्तारित अधिकार:** अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निजता का अधिकार (पुट्टास्वामी वाद), स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार, शिक्षा का अधिकार और विधिक सहायता का अधिकार शामिल हैं।

2.4 अनुच्छेद 21-A: शिक्षा का अधिकार

86वें संविधान संशोधन (2002) द्वारा इसे जोड़ा गया। राज्य 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। इसके क्रियान्वयन हेतु 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE), 2009' विनिर्मित किया गया।

2.5 अनुच्छेद 22: गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण

यह अनुच्छेद दो प्रकार की गिरफ्तारियों से सुरक्षा प्रदान करता है:

- **सामान्य दंडिक विधि के तहत:** गिरफ्तारी का कारण जानने का अधिकार, अपनी पसंद के वकील से परामर्श का अधिकार और 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेशी का अधिकार।
- **निवारक निरोध (Preventive Detention):** बिना किसी मुकदमे के भविष्य में अपराध रोकने हेतु गिरफ्तारी। इसकी अधिकतम अवधि सामान्यतः 3 माह होती है।

3. अद्यतन विधिक वाद एवं न्यायिक दृष्टिकोण

वाद (Case Law)	विधिक प्रभाव / सिद्धांत
के.एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ (2017)	निजता के अधिकार (Right to Privacy) को अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार घोषित किया गया।
नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ (2018)	समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर करते हुए व्यक्तिगत स्वायत्तता और गरिमा को अनुच्छेद 21 का हिस्सा माना गया।
शायरा बानो बनाम भारत संघ (2017)	'तीन तलाक' (Talaq-e-Biddat) को अनुच्छेद 14 के तहत 'मनमाना' मानते हुए असंवैधानिक घोषित किया गया।
अनुराधा भसीन बनाम भारत संघ (2020)	इंटरनेट के माध्यम से सूचना तक पहुँच और अभिव्यक्ति को अनुच्छेद 19(1)(a) के तहत संरक्षित माना गया।

जनहित अभियान बनाम भारत संघ (2022)	EWS आरक्षण (103वाँ संशोधन) को संविधान के मूल ढांचे के अनुकूल मानते हुए वैध ठहराया गया।
-----------------------------------	--

4. तुलनात्मक विश्लेषण तालिका: अनुच्छेद 19 बनाम अनुच्छेद 21

आयाम	अनुच्छेद 19 (स्वतंत्रता)	अनुच्छेद 21 (जीवन एवं दैहिक स्वतंत्रता)
प्रकृति	केवल नागरिकों के लिए उपलब्ध।	नागरिक एवं विदेशी दोनों के लिए उपलब्ध।
निलंबन	अनुच्छेद 358 के तहत युद्ध/बाह्य आक्रमण के समय स्वतः निलंबित।	अनुच्छेद 359 के तहत भी निलंबित नहीं किया जा सकता (44वाँ संशोधन)।
विषय-वस्तु	विशिष्ट छह स्वतंत्रताओं का समूह।	जीवन के अधिकार का व्यापक संस्तर।
प्रतिबंध	अनुच्छेद 19(2-6) के आधारों पर सीमित।	केवल विधि द्वारा स्थापित न्यायपूर्ण प्रक्रिया द्वारा सीमित।

5. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **विधि का शासन (Rule of Law):** शासन का वह रूप जहाँ कानून सर्वोपरि है, कोई व्यक्ति नहीं।
- **सकारात्मक विभेद (Positive Discrimination):** ऐतिहासिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान हेतु किए गए विशेष प्रावधान।
- **क्रीमी लेयर (Creamy Layer):** पिछड़ा वर्ग के भीतर आर्थिक रूप से संपन्न तबका जो आरक्षण के लाभ से बाहर होता है।
- **निवारक निरोध (Preventive Detention):** किसी व्यक्ति को अपराध करने की आशंका के आधार पर हिरासत में लेना।
- **विधिक उपचार (Legal Remedy):** अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में न्यायालय से सहायता प्राप्त करने की वैधानिक शक्ति।

6. प्रशासनिक एवं विनियामक निहितार्थ

मौलिक अधिकारों का यह संस्तर किसी भी प्रशासनिक अधिकारी के लिए विधिक आचरण का मूलाधार है। अनुच्छेद 14 यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी प्रशासनिक निर्णय मनमाना या भेदभावपूर्ण न हो। अनुच्छेद 19 और 21 लोक व्यवस्था बनाए रखने के दौरान व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ संतुलन बिठाने की चुनौती प्रस्तुत करते हैं। विशेष रूप से निवारक निरोध (अनुच्छेद 22) का प्रयोग करते समय सुरक्षा और नागरिक गरिमा के मध्य का विन्यास अत्यंत संवेदी होता है। अद्यतन वादों जैसे पुट्टास्वामी वाद ने डेटा सुरक्षा और निजता को प्रशासन के नए आयाम के रूप में विस्थापित किया है।

7. महत्वपूर्ण विधिक तथ्य

- **44वाँ संविधान संशोधन (1978):** इसके द्वारा अनुच्छेद 20 और 21 को आपातकाल के दौरान भी निलंबित न किए जाने की अभेद्य विधिक सुरक्षा प्रदान की गई।
- **103वाँ संविधान संशोधन (2019):** अनुच्छेद 15(6) और 16(6) को जोड़कर आर्थिक आधार पर आरक्षण का ऐतिहासिक विन्यास किया गया।
- **आरक्षण की सांख्यिकीय सीमा:** इन्द्रा साहनी वाद के अनुसार सामान्यतः आरक्षण 50% से अधिक नहीं होना चाहिए, परंतु EWS के पश्चात यह विन्यास विशिष्ट सांख्यिकीय विमर्श का विषय है।
- **प्रेस की स्वतंत्रता:** यद्यपि इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, परंतु सर्वोच्च न्यायालय ने 'सकल पेपर्स वाद' और 'बेनेट कोलमैन वाद' में इसे अनुच्छेद 19(1)(a) का अंतर्निहित हिस्सा माना है।

8. निष्कर्ष:

अनुच्छेद 14 से 22 तक का यह विन्यास भारतीय संविधान का वह 'मेटासोमैटिक रूपांतरण' है जिसने औपनिवेशिक प्रजा को संप्रभु नागरिक में परिवर्तित किया है। जहाँ समानता का अधिकार सामाजिक न्याय सुनिश्चित करता है, वहीं स्वतंत्रता का अधिकार व्यक्ति के सर्वांगीण विकास हेतु अनिवार्य पारि-पारिस्थितिकी निर्मित करता है। न्यायपालिका द्वारा इन अनुच्छेदों की निरंतर उदार व्याख्या (विशेषकर अनुच्छेद 21) ने इसे एक 'जीवंत विलेख' बना दिया है, जो बदलती सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार नागरिक अधिकारों की रक्षा हेतु सदैव तत्पर है।

अध्याय 17: मौलिक अधिकार (भाग III): शोषण के विरुद्ध, धार्मिक स्वतंत्रता और संवैधानिक उपचारों का अधिकार

भारतीय संविधान का भाग III नागरिक गरिमा और अधिकारों का सर्वोच्च विलेख है। पूर्व में समानता और स्वतंत्रता के अधिकारों के विश्लेषण के पश्चात, यह अध्याय उन विशिष्ट विधिक सुरक्षा कवचों पर केंद्रित है जो व्यक्तियों को शोषण से बचाते हैं, अंतःकरण की स्वतंत्रता सुनिश्चित करते हैं और अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में अभेद्य न्यायिक उपचार प्रदान करते हैं।

1. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)

यह अधिकार मानवीय गरिमा को अक्षुण्ण बनाए रखने और समाज के दुर्बल वर्गों को विधिक संरक्षण प्रदान करने हेतु विन्यासित किया गया है।

1.1 अनुच्छेद 23: मानव तस्करी और बलात श्रम का निषेध

यह अनुच्छेद 'मानव दुर्व्यापार', 'बेगार' और इसी प्रकार के अन्य 'बलात श्रम' को विधिक रूप से प्रतिबंधित करता है।

- **मानव दुर्व्यापार:** इसके अंतर्गत पुरुषों, महिलाओं और बच्चों की वस्तु की भांति खरीद-बिक्री, वैश्यावृत्ति और देवदासी प्रथा जैसे कृत्य शामिल हैं।
- **बलात श्रम (Force Labour):** इसका अर्थ केवल शारीरिक शक्ति द्वारा कराया गया काम नहीं है, बल्कि आर्थिक विवशता (न्यूनतम मजदूरी से कम पर काम कराना) के कारण कराया गया कार्य भी इसके दायरे में आता है।
- **विवाद और अपवाद:** राज्य को सार्वजनिक उद्देश्यों (जैसे सैन्य सेवा या सामाजिक सेवा) के लिए अनिवार्य सेवा लागू करने का विधिक अधिकार है। ऐसी सेवा लागू करते समय राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

1.2 अनुच्छेद 24: कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का निषेध

यह अनुच्छेद 14 वर्ष से कम आयु के बालकों को किसी कारखाने, खान या अन्य संकटमय गतिविधियों (जैसे निर्माण कार्य या रेलवे) में नियोजन को पूर्णतः प्रतिबंधित करता है।

- **बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम:** वर्ष 2016 के संशोधन के पश्चात अब सभी व्यवसायों में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के नियोजन पर पूर्ण विधिक प्रतिबंध है, केवल पारिवारिक उद्यमों को छोड़कर (स्कूल के समय के पश्चात)।

2. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)

भारत एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र है। संविधान का यह संस्तर 'सर्व धर्म समभाव' के वैधानिक आदर्श को पुष्ट करता है।

2.1 अनुच्छेद 25: अंतःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता

- **अंतःकरण की स्वतंत्रता:** किसी भी व्यक्ति को अपने ईश्वर या अदृश्य शक्ति के साथ अपने ढंग से संबंध बनाने का आंतरिक विधिक अधिकार है।
- **प्रसार का अधिकार:** अपने धार्मिक विश्वासों को दूसरों को बताने का अधिकार है, परंतु इसमें 'जबरन धर्मांतरण' का विधिक अधिकार शामिल नहीं है।
- **सीमाएं:** ये स्वतंत्रताएं सार्वजनिक व्यवस्था (Public Order), नैतिकता (Morality) और स्वास्थ्य (Health) के अधीन हैं।

2.2 अनुच्छेद 26: धार्मिक मामलों के प्रबंधन की स्वतंत्रता

यह अधिकार व्यक्तिगत न होकर 'धार्मिक संप्रदायों' को सामूहिक रूप से प्राप्त है:

1. धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए संस्थानों की स्थापना और रखरखाव।
2. अपने धर्म-विषयक कार्यों का प्रबंधन करने का अधिकार।
3. चल और अचल संपत्ति के स्वामित्व और अधिग्रहण का अधिकार।

2.3 अनुच्छेद 27: किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करें के भुगतान से स्वतंत्रता

राज्य किसी भी व्यक्ति को ऐसे कर (Tax) का भुगतान करने के लिए विधिक रूप से बाध्य नहीं करेगा जिसकी आय का उपयोग किसी विशिष्ट धर्म के पोषण के लिए किया जाना हो। राज्य करें के माध्यम से प्राप्त सार्वजनिक धन को किसी एक धर्म के लिए खर्च नहीं कर सकता।

2.4 अनुच्छेद 28: शिक्षण संस्थानों में धार्मिक शिक्षा या उपासना में उपस्थिति से स्वतंत्रता

- **पूर्णतः राज्य निधि से संचालित संस्थान:** यहाँ धार्मिक शिक्षा पूर्णतः कानूनन वर्जित है।
- **राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या सहायता प्राप्त संस्थान:** यहाँ धार्मिक शिक्षा स्वैच्छिक है; किसी भी व्यक्ति को उसकी सहमति के बिना धार्मिक निर्देशों में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

3. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने अनुच्छेद 32 को 'संविधान की आत्मा और उसका हृदय' कहा था। यह अनुच्छेद मौलिक अधिकारों को वास्तविक प्रवर्तनीय शक्ति प्रदान करता है।

3.1 विधिक स्थिति और संप्रभुता

- अनुच्छेद 32 स्वयं में एक मौलिक अधिकार है। यह नागरिकों को अपने अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में सीधे **सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court)** जाने का विधिक अधिकार प्रदान करता है।
- सर्वोच्च न्यायालय को अधिकारों के प्रवर्तन हेतु निर्देश, आदेश या 'रिट' (Writ) जारी करने की शक्ति प्राप्त है।

3.2 पांच प्रकार के रिट (Writs) का विन्यास

रिट का नाम	शाब्दिक अर्थ	विधिक अनुप्रयोग
बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)	'सशरीर प्रस्तुत करना'	अवैध रूप से हिरासत में लिए गए व्यक्ति को रिहा करने हेतु जारी।
परमादेश (Mandamus)	'हम आज्ञा देते हैं'	सार्वजनिक अधिकारी को अपने विधिक कर्तव्यों के निर्वहन हेतु आदेश देना।
प्रतिषेध (Prohibition)	'रोकना'	उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाने से रोकने हेतु।
उत्प्रेषण (Certiorari)	'पूर्णतः सूचित होना'	अधीनस्थ न्यायालय में लंबित वाद को उच्च न्यायालय में स्थानांतरित करने हेतु।
अधिकार पृच्छा (Quo-Warranto)	'किस वारंट या अधिकार से'	किसी व्यक्ति द्वारा अवैध रूप से सार्वजनिक पद धारण करने की जाँच करने हेतु।

4. तुलनात्मक विश्लेषण: अनुच्छेद 32 बनाम अनुच्छेद 226

यद्यपि दोनों अनुच्छेद रिट जारी करने की शक्ति देते हैं, परंतु इनका विन्यास भिन्न है।

आयाम	अनुच्छेद 32 (सर्वोच्च न्यायालय)	अनुच्छेद 226 (उच्च न्यायालय)
क्षेत्राधिकार	केवल मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन हेतु।	मौलिक अधिकारों के साथ-साथ 'अन्य विधिक अधिकारों' हेतु भी।
भौगोलिक सीमा	संपूर्ण भारत के विरुद्ध।	संबंधित राज्य की सीमाओं के भीतर।
प्रकृति	यह स्वयं में एक मौलिक अधिकार है।	यह एक विवेकाधीन विधिक शक्ति है।

5. महत्वपूर्ण विधिक वाद एवं न्यायिक दृष्टिकोण

- **पुट्टास्वामी वाद (2017):** निजता के अधिकार को अनुच्छेद 21 के साथ जोड़कर धार्मिक स्वतंत्रता (अंतःकरण) के आयामों को भी बल प्रदान किया गया।
- **शायरा बानो वाद (2017):** 'तीन तलाक' को अनुच्छेद 14 और 25 के आलोक में मनमाना और असंवैधानिक घोषित किया गया।
- **एस.आर. बोम्मई वाद (1994):** पंथनिरपेक्षता को संविधान का 'मूल ढांचा' माना गया और अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग को रोकने हेतु अनुच्छेद 32 के महत्व को पुष्ट किया गया।

6. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **लोकस स्टैंडार्ड (Locus Standi):** वह विधिक नियम जिसके अनुसार केवल पीड़ित व्यक्ति ही न्यायालय जा सकता है (अनुच्छेद 32 में जनहित याचिका - PIL द्वारा इसमें ढील दी गई है)।
- **बेगार (Begar):** बिना पारिश्रमिक के अनिवार्य श्रम कराने की आदिम दमनकारी प्रथा।
- **अधिग्रहण (Eminent Domain):** राज्य की वह संप्रभु शक्ति जिसके तहत वह सार्वजनिक उपयोग के लिए निजी संपत्ति अधिग्रहित कर सकता है (अनुच्छेद 26 के संदर्भ में)।
- **न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review):** न्यायालय की वह शक्ति जिसके द्वारा वह विधायी अधिनियमों की संवैधानिक वैधता की जाँच करता है।

7. सांख्यिकीय और तथ्यात्मक विशिष्टताएं

- **44वां संविधान संशोधन (1978):** संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों से हटाकर अनुच्छेद 300-A में विधिक अधिकार बनाया गया।
- **अनुच्छेद 32 का निलंबन:** केवल राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352) के दौरान राष्ट्रपति के आदेश द्वारा अनुच्छेद 32 के तहत न्यायालय जाने का अधिकार निलंबित किया जा सकता है।
- **पंथनिरपेक्षता की प्रविष्टि:** 'पंथनिरपेक्ष' शब्द 42वें संशोधन 1976 द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया, जिसने अनुच्छेद 25-28 को वैधानिक मजबूती दी।

8. प्रशासनिक एवं विनियामक निहितार्थ

मौलिक अधिकारों का यह समूह किसी भी प्रशासनिक निर्णय की वैधता को मापने का 'लिटमस टेस्ट' है। अनुच्छेद 23 और 24 का अनुपालन सुनिश्चित करना श्रम विभाग और जिला प्रशासन का प्राथमिक विधिक दायित्व है। इसी प्रकार, अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी की गई 'रिट्स' कार्यपालिका की निरंकुशता पर अंकुश लगाती हैं और लोक सेवकों को उनके विधिक कर्तव्यों के प्रति जवाबदेह बनाती हैं। प्रशासनिक अधिकारियों के लिए यह आवश्यक है कि वे किसी भी नियम या योजना को लागू करते समय यह सुनिश्चित करें कि वह किसी व्यक्ति के धार्मिक आचरण (अनुच्छेद 25) में हस्तक्षेप न करे, बशर्ते वह सार्वजनिक व्यवस्था या स्वास्थ्य के विरुद्ध न हो।

9. निष्कर्ष:

अनुच्छेद 23 से 32 तक का यह विन्यास भारतीय संविधान को एक '**जीवंत विलेख**' बनाता है। जहाँ शोषण के विरुद्ध अधिकार समाज के हाशिए पर खड़े व्यक्तियों को सुरक्षा देते हैं, वहीं धार्मिक स्वतंत्रता बहुसंस्कृतिवाद को वैधानिक स्थायित्व प्रदान करती है। अंततः अनुच्छेद 32 इन सभी अधिकारों को केवल कागजी वादों से बदलकर वास्तविक विधिक गारंटी में रूपांतरित कर देता है। यह ढांचा स्वतंत्र भारत के नागरिकों को राज्य की शक्तियों के विरुद्ध एक अभेद्य रक्षात्मक विन्यास प्रदान करता है।

wincompete

अध्याय 18: राज्य के नीति निदेशक तत्व (भाग IV): समाजवादी, गांधीवादी और उदार बौद्धिक सिद्धांत

भारतीय संविधान के भाग IV में अनुच्छेद 36 से 51 तक 'राज्य के नीति निदेशक तत्वों' (Directive Principles of State Policy - DPSP) का विन्यास किया गया है। ये तत्व आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य के लिए उन सामाजिक और आर्थिक आधारों का निर्माण करते हैं, जिन पर लोक कल्याणकारी राज्य की भव्य अट्टालिका टिकी है। इन सिद्धांतों को आयरलैंड के संविधान से ग्रहण किया गया है, जिसने स्वयं इन्हें स्पेन के संविधान से प्राप्त किया था। डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने इन्हें "भारतीय संविधान की अनूठी विशेषता" (Novel Features) कहा था।

1. नीति निदेशक तत्वों की वैधानिक प्रकृति और दार्शनिक मूलधार

नीति निदेशक तत्व राज्य के लिए वे विधिक और नैतिक निर्देश हैं, जिन्हें शासन के संचालन में मूलभूत माना गया है।

- **गैर-वादयोग्य प्रकृति (Non-justiciable):** अनुच्छेद 37 स्पष्ट करता है कि ये तत्व किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं। इसका अर्थ है कि यदि राज्य इन्हें लागू नहीं करता, तो नागरिक विधिक उपचार हेतु न्यायालय नहीं जा सकते।
- **शासन में मूलभूत:** न्यायालय द्वारा लागू न होने के बावजूद, अनुच्छेद 37 यह घोषित करता है कि ये तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि निर्माण में इन सिद्धांतों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।
- **उद्देश्य:** इनका मुख्य उद्देश्य 'आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र' की स्थापना करना है, जो राजनीतिक लोकतंत्र (मौलिक अधिकारों द्वारा प्रदत्त) का पूरक है।

2. नीति निदेशक तत्वों का वर्गीकरण

यद्यपि संविधान में इनका औपचारिक वर्गीकरण नहीं किया गया है, परंतु इनके वैधानिक अंतर्वस्तु और निर्देशों के आधार पर इन्हें तीन व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

A. समाजवादी सिद्धांत (Socialistic Principles)

ये सिद्धांत लोक कल्याणकारी राज्य के ढांचे का निर्माण करते हैं और सामाजिक-आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखते हैं।

- **अनुच्छेद 38:** राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय सुनिश्चित हो। आय, प्रतिष्ठा और अवसर की असमानता को कम करना राज्य का विधिक दायित्व है।
- **अनुच्छेद 39:** राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि:
 - सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त हों।
 - भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार हो कि सामूहिक हित सर्वोत्तम रूप से सध सके।
 - धन और उत्पादन के साधनों का अहितकारी संकेंद्रण न हो।
 - पुरुषों और स्त्रियों को 'समान कार्य के लिए समान वेतन' प्राप्त हो।
- **अनुच्छेद 39-A:** समान न्याय और गरीबों को निःशुल्क विधिक सहायता (42वें संशोधन 1976 द्वारा जोड़ा गया)।
- **अनुच्छेद 41:** कुछ दशाओं में (काम, शिक्षा और लोक सहायता) पाने का अधिकार। यह बेकारी, बुढ़ापे और बीमारी की स्थिति में राज्य के संरक्षण का प्रावधान करता है।
- **अनुच्छेद 42:** काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाएं सुनिश्चित करना तथा 'प्रसूति सहायता' (Maternity Relief) का विन्यास।
- **अनुच्छेद 43:** कर्मचारों के लिए निर्वाह मजदूरी और शिष्ट जीवन स्तर सुनिश्चित करना।
- **अनुच्छेद 43-A:** उद्योगों के प्रबंधन में कर्मचारों की भागीदारी (42वें संशोधन 1976 द्वारा जोड़ा गया)

B. गांधीवादी सिद्धांत (Gandhian Principles)

ये सिद्धांत राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तुत वैचारिक कार्यक्रमों और सामाजिक पुनर्निर्माण के सिद्धांतों पर आधारित हैं।

- **अनुच्छेद 40:** ग्राम पंचायतों का संगठन। राज्य ग्राम पंचायतों के गठन हेतु कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियां प्रदान करेगा कि वे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।
- **अनुच्छेद 43:** ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर 'कुटीर उद्योगों' (Cottage Industries) को प्रोत्साहन देना।
- **अनुच्छेद 43-B:** सहकारी समितियों का स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त संचालन और लोकतांत्रिक नियंत्रण (97वें संशोधन 2011 द्वारा जोड़ा गया)।
- **अनुच्छेद 46:** अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों की अभिवृद्धि करना तथा सामाजिक अन्याय से उनकी रक्षा करना।
- **अनुच्छेद 47:** स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नशीली दवाओं, मदिरा और नशीले पदार्थों के सेवन पर विधिक प्रतिबन्ध लगाना।
- **अनुच्छेद 48:** गायों, बछड़ों और अन्य दुधारू पशुओं के वध पर रोक लगाना तथा उनकी नस्लों में सुधार को प्रोत्साहित करना।

C. उदार बौद्धिक सिद्धांत (Liberal-Intellectual Principles)

ये सिद्धांत आधुनिक उदारवाद और वैश्विक विधिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं।

- **अनुच्छेद 44:** समस्त भारत के राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए 'समान नागरिक संहिता' (Uniform Civil Code) सुनिश्चित करना।
- **अनुच्छेद 45:** सभी बालकों को 6 वर्ष की आयु पूरी करने तक प्रारंभिक बाल्यावस्था देखरेख और शिक्षा (ECCE) प्रदान करना (86वें संशोधन 2002 द्वारा संशोधित)।
- **अनुच्छेद 48:** कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करना।
- **अनुच्छेद 48-A:** पर्यावरण का संरक्षण और संवर्धन तथा वन एवं वन्यजीवों की रक्षा करना (42वें संशोधन 1976 द्वारा जोड़ा गया)।
- **अनुच्छेद 49:** राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का विधिक संरक्षण करना।
- **अनुच्छेद 50:** राज्य की लोक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से विधिक रूप से पृथक करना।
- **अनुच्छेद 51:** अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि करना, राष्ट्रों के मध्य न्यायसंगत संबंध बनाए रखना और अंतरराष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाने को प्रोत्साहन देना।

3. महत्वपूर्ण वैधानिक संशोधन और नवीन प्रविष्टियां

नीति निदेशक तत्वों के ढांचे में समय-समय पर महत्वपूर्ण विधिक परिवर्तन किए गए हैं:

संशोधन	प्रभावी अनुच्छेद	विनिर्दिष्ट परिवर्तन
42वाँ संशोधन (1976)	39, 39-A, 43-A, 48-A	निःशुल्क विधिक सहायता, उद्योगों में श्रमिकों की भागीदारी और पर्यावरण संरक्षण जोड़ा गया।

44वाँ संशोधन (1978)	38(2)	आय, स्थिति, सुविधाओं और अवसरों की असमानता को कम करने का निर्देश।
86वाँ संशोधन (2002)	45	प्राथमिक बाल्यावस्था शिक्षा का दायरा 6 वर्ष तक सीमित किया गया (6-14 हेतु अनुच्छेद 21-A बना)।
97वाँ संशोधन (2011)	43-B	सहकारी समितियों के संवर्धन हेतु नया अनुच्छेद जोड़ा गया।

4. मौलिक अधिकार (भाग III) और नीति निदेशक तत्व (भाग IV) के मध्य विधिक गतिरोध

संविधान के इन दो प्रमुख भागों के मध्य प्राथमिकता को लेकर न्यायिक इतिहास में एक लंबी विकास यात्रा रही है:

1. **चंपकम दोराईराजन वाद (1951):** सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि मौलिक अधिकार नीति निदेशक तत्वों पर प्रभावी होंगे। DPSP को मौलिक अधिकारों के "सहायक" के रूप में कार्य करना होगा।
2. **गोलकनाथ वाद (1967):** न्यायालय ने कहा कि मौलिक अधिकार 'अलंघनीय' हैं और उन्हें नीति निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए संशोधित नहीं किया जा सकता।
3. **24वाँ और 25वाँ संशोधन (1971):** संसद ने अनुच्छेद 31-C जोड़कर यह प्रावधान किया कि अनुच्छेद 39(b) और 39(c) को लागू करने वाली विधियों को इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकेगा कि वे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती हैं।
4. **केशवानंद भारती वाद (1973):** न्यायालय ने 25वें संशोधन के उपर्युक्त हिस्से को वैध माना और 'मूल ढांचे' का सिद्धांत प्रतिपादित किया।
5. **मिनर्वा मिल्स वाद (1980):** न्यायालय ने ऐतिहासिक निर्णय दिया कि भारतीय संविधान की आधारशिला **मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों के मध्य संतुलन** पर टिकी है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

5. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **आर्थिक न्याय:** धन के संकेंद्रण को रोकना और संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित करना।
- **समान नागरिक संहिता (UCC):** समस्त नागरिकों के लिए विवाह, तलाक और उत्तराधिकार जैसे निजी कानूनों में एकरूपता (अनुच्छेद 44)।
- **प्रसूति सहायता:** कामकाजी महिलाओं को मातृत्व के दौरान विधिक और चिकित्सीय संरक्षण (अनुच्छेद 42)।
- **कार्यपालिका का न्यायपालिका से पृथक्करण:** शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के तहत न्यायिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करना (अनुच्छेद 50)।
- **सहयोगपूर्ण संघवाद:** अनुच्छेद 51 के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय संबंधों में विधिक मर्यादा का पालन।

6. तुलनात्मक तालिका: मौलिक अधिकार बनाम नीति निदेशक तत्व

आधार	मौलिक अधिकार (भाग III)	नीति निदेशक तत्व (भाग IV)
प्रकृति	नकारात्मक (राज्य को कुछ करने से रोकते हैं)।	सकारात्मक (राज्य को कुछ करने का निर्देश देते हैं)।
न्यायसंगतता	वादयोग्य (न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय)।	गैर-वादयोग्य (न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय)।
लक्ष्य	राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना।	सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना।
निलंबन	आपातकाल के दौरान निलंबित किए जा सकते हैं।	ये स्वतः निलंबित नहीं होते, बल्कि निरंतर मार्गदर्शक हैं।
विधिक शक्ति	इनका उल्लंघन होने पर अनुच्छेद 32 के तहत रिट जारी हो सकती है।	इन्हें लागू करने के लिए पृथक विधायी अधिनियमों की आवश्यकता होती है।

7. नीति निदेशक तत्वों का प्रशासनिक क्रियान्वयन और प्रभाव

राज्य ने समय-समय पर विभिन्न विधिक अधिनियमों के माध्यम से इन सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया है:

- **सामाजिक न्याय:** अनुच्छेद 46 के अनुपालन में अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 का निर्माण।
- **ग्राम स्वराज:** अनुच्छेद 40 को प्रभावी बनाने हेतु 73वें और 74वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं का विन्यास।
- **आर्थिक संरक्षण:** अनुच्छेद 39 के तहत न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 और मनरेगा (MGNREGA) जैसी योजनाओं का संचालन।
- **पर्यावरण:** अनुच्छेद 48-A के तहत वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972 और पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 का निर्माण।
- **विधिक सहायता:** अनुच्छेद 39-A के तहत 'नालसा' (NALSA) और विधिक सेवा प्राधिकरणों की स्थापना।

नीति निदेशक तत्व भारतीय संविधान के वे 'मेटासोमैटिक' विनियामक घटक हैं, जो समय के साथ विकसित होते हुए भारत को एक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज की ओर ले जाने का विधिक मार्ग प्रशस्त करते हैं। इनका पालन करना न केवल राज्य का वैधानिक कर्तव्य है, बल्कि यह देश के सतत और समावेशी विकास की सर्वोच्च अभेद्य आधारशिला है।

अध्याय 19: मौलिक कर्तव्य (भाग IV-A): स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशें, 86वां संशोधन और नागरिक चेतना

भारतीय संविधान के मूल पाठ में नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों का कोई विनिर्देश शामिल नहीं था। लोकतंत्र की सफलता केवल अधिकारों के उपभोग पर नहीं, बल्कि नागरिकों द्वारा अपने दायित्वों के निर्वहन पर भी टिकी होती है। इसी दार्शनिक आधार पर आपातकाल के दौरान संविधान में मौलिक कर्तव्यों के एक नए संस्तर को विन्यासित किया गया, जो नागरिकों को उनके राष्ट्रीय और सामाजिक उत्तरदायित्वों का विधिक बोध कराता है।

1. ऐतिहासिक विन्यास और स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशें

वर्ष 1976 में तत्कालीन केंद्र सरकार ने मौलिक कर्तव्यों की आवश्यकता और उनके विधिक स्वरूप पर विचार करने के लिए 'सरदार स्वर्ण सिंह समिति' का गठन किया। इस समिति का मुख्य वैधानिक तर्क यह था कि नागरिकों को केवल अधिकारों के प्रति सजग नहीं होना चाहिए, बल्कि उन्हें यह भी समझना चाहिए कि अधिकारों के साथ कुछ अनिवार्य कर्तव्य भी जुड़े होते हैं।

समिति की प्रमुख सिफारिशें और विधिक स्वरूप:

- समिति ने संविधान में आठ मौलिक कर्तव्यों को शामिल करने का सुझाव दिया था।
- समिति ने कर्तव्यों के उल्लंघन पर संसद को विधिक दंड या जुर्माना लगाने की शक्ति देने की सिफारिश की थी।
- समिति द्वारा 'कर अदायगी' (Paying Taxes) को भी एक मौलिक कर्तव्य बनाने का सुझाव दिया गया था, जिसे बाद में सरकार द्वारा विधिक रूप से स्वीकार नहीं किया गया।

42वां संविधान संशोधन (1976):

समिति की सिफारिशों के आधार पर 42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में एक नया **भाग IV-A** और **अनुच्छेद 51-A** जोड़ा गया। यद्यपि समिति ने 8 कर्तव्यों का सुझाव दिया था, परंतु संसद ने इस संशोधन के माध्यम से **10 मौलिक कर्तव्यों** को विधिक रूप से अंगीकार किया।

2. 86वां संविधान संशोधन और कर्तव्यों का सांख्यिकीय विस्तार

वर्ष 1976 से 2002 तक मौलिक कर्तव्यों की कुल संख्या 10 बनी रही। **86वें संविधान संशोधन अधिनियम (2002)** ने इस विन्यास में एक महत्वपूर्ण और युगांतरकारी परिवर्तन किया।

- **11वां मौलिक कर्तव्य:** इस संशोधन द्वारा अनुच्छेद 51-A में एक नया उप-खंड (k) जोड़ा गया।
- **वैधानिक प्रावधान:** यह प्रत्येक माता-पिता या संरक्षक का कर्तव्य बनाता है कि वे 6 से 14 वर्ष तक की आयु के अपने बच्चों को शिक्षा के अवसर प्रदान करें।
- **महत्व:** यह संशोधन अनुच्छेद 21-A (शिक्षा का अधिकार) और अनुच्छेद 45 (नीति निदेशक तत्व) के साथ मिलकर भारत में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा के विनियामक ढांचे को पूर्ण करता है।

3. अनुच्छेद 51-A: 11 मौलिक कर्तव्यों का प्रामाणिक पाठ

संविधान के अनुच्छेद 51-A के अनुसार, भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह:

कूट	मौलिक कर्तव्य का विनिर्दिष्ट विवरण
(a)	संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।
(b)	स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

(c)	भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।
(d)	देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
(e)	भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हों।
(f)	हमारी सामासिक संस्कृति (Composite Culture) की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे।
(g)	प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।
(h)	वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
(i)	सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।
(j)	व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।
(k)	यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

4. मौलिक कर्तव्यों की विधिक प्रकृति और प्रवर्तनीयता

मौलिक कर्तव्यों की प्रकृति मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों के मध्य का एक विन्यास है।

- **गैर-न्यायसंगत (Non-justiciable):** नीति निदेशक तत्वों की भांति, मौलिक कर्तव्य भी न्यायालयों द्वारा सीधे प्रवर्तनीय नहीं हैं। उनके उल्लंघन पर संविधान में किसी प्रत्यक्ष दंड का प्रावधान नहीं है।
- **संसदीय शक्ति:** संसद उपयुक्त विधान (कानून) बनाकर इन कर्तव्यों के क्रियान्वयन को विधिक रूप से सुनिश्चित कर सकती है।
- **नागरिक केंद्रित:** ये कर्तव्य केवल भारतीय नागरिकों पर लागू होते हैं, विदेशियों पर नहीं।

5. वर्मा समिति (1999) और कर्तव्यों का विधिक क्रियान्वयन

मौलिक कर्तव्यों के क्रियान्वयन के लिए विधिक प्रावधानों की पहचान करने हेतु वर्ष 1999 में 'जे.एस. वर्मा समिति' का गठन किया गया था। इस समिति ने विभिन्न प्रवर्तमान कानूनों को रेखांकित किया जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मौलिक कर्तव्यों को लागू करते हैं:

तालिका: मौलिक कर्तव्यों को समर्थन देने वाले विधिक अधिनियम

अधिनियम का नाम	संबंधित कर्तव्य / विषय वस्तु
राष्ट्र गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971	राष्ट्रध्वज, संविधान और राष्ट्रगान के अनादर को रोकना।
वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972	दुर्लभ और लुप्तप्राय प्रजातियों के व्यापार और शिकार पर रोक।
वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980	वनों की कटाई और वन भूमि के गैर-वानिकी उपयोग पर नियंत्रण।
सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955	जाति और धर्म से संबंधित भेदभावपूर्ण प्रथाओं का निषेध।
भारतीय दंड संहिता (IPC)	राष्ट्रीय अखंडता को नुकसान पहुंचाने वाले कृत्यों के लिए दंड।

6. नागरिक चेतना पारिस्थितिकी और दार्शनिक आयाम

मौलिक कर्तव्य भारत की 'नागरिक चेतना पारिस्थितिकी' के विनियामक घटक हैं। ये केवल विधिक निर्देश नहीं हैं, बल्कि भारतीय समाज की प्राचीन परंपराओं और आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों का एक संश्लेषण हैं।

- **अधिकारों और कर्तव्यों का सह-अस्तित्व:** यह दार्शनिक रूप से स्थापित है कि कर्तव्य के बिना अधिकार निरंकुशता को जन्म देते हैं और अधिकार के बिना कर्तव्य दासता को।
- **सामासिक संस्कृति (Composite Culture):** अनुच्छेद 51-A(f) भारत की 'विविधता में एकता' को वैधानिक स्थायित्व प्रदान करता है। यह नागरिकों को अपनी साझा विरासत के संरक्षण हेतु प्रेरित करता है।
- **वैज्ञानिक दृष्टिकोण:** अनुच्छेद 51-A(h) नागरिकों में अंधविश्वास और रूढ़िवादिता के स्थान पर तर्कसंगत और आधुनिक विधिक चेतना विकसित करने का निर्देश देता है।

7. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **सामासिक संस्कृति:** वह सांस्कृतिक विन्यास जो विभिन्न धर्मों, भाषाओं और समुदायों के ऐतिहासिक मेलजोल से विकसित हुआ है।
- **अक्षुण्ण (Inviolable):** एकता और अखंडता को बिना किसी क्षति के सुरक्षित बनाए रखने का विधिक संकल्प।
- **मानववाद:** वह दार्शनिक दृष्टिकोण जो मनुष्य की गरिमा और सुधार की संभावना को केंद्र में रखता है।
- **निवारक विन्यास:** कर्तव्यों के उल्लंघन को रोकने के लिए बनाए गए वैधानिक अवरोध।
- **मेटासोमैटिक नागरिक रूपांतरण:** अधिकारों के उपभोक्ता से उत्तरदायी नागरिक के रूप में व्यक्ति का विधिक और नैतिक विकास।

8. तुलनात्मक तालिका: मौलिक अधिकार बनाम मौलिक कर्तव्य

तुलना का आधार	मौलिक अधिकार (भाग III)	मौलिक कर्तव्य (भाग IV-A)
स्रोत	अमेरिका के संविधान से प्रेरित।	पूर्व सोवियत संघ (USSR) से प्रेरित।
प्रकृति	नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों (राज्य पर प्रतिबंध)।	केवल सकारात्मक निर्देश (नागरिकों हेतु दायित्व)।
प्रवर्तनीयता	सीधे न्यायालय द्वारा लागू (अनुच्छेद 32)।	संसद द्वारा कानून बनाकर ही दंडनीय।
निलंबन	आपातकाल में निलंबित संभव (20-21 छोड़कर)।	ये स्थायी हैं, निलंबन का प्रश्न नहीं उठता।
लाभार्थी	नागरिक एवं विदेशी (कुछ अपवादों के साथ)।	केवल भारत के नागरिकों हेतु विनिर्दिष्ट।

9. नागरिक कर्तव्यों का प्रशासनिक और सामाजिक प्रभाव

मौलिक कर्तव्य प्रशासन और जनता के मध्य एक 'रक्षात्मक विन्यास' निर्मित करते हैं।

- **सार्वजनिक संपत्ति का संरक्षण:** अनुच्छेद 51-A(i) दंगों और विरोध प्रदर्शनों के दौरान होने वाली राष्ट्रीय क्षति को रोकने का एक नैतिक और विधिक आधार प्रदान करता है।
- **पर्यावरण संरक्षण:** अनुच्छेद 51-A(g) के कारण ही न्यायपालिका ने 'प्रदूषण फैलाने वाला भुगतान करे' (Polluter Pays Principle) जैसे आधुनिक सिद्धांतों को विधिक रूप से प्रभावी बनाया है।
- **लैंगिक समानता:** अनुच्छेद 51-A(e) स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध प्रथाओं का त्याग करने का निर्देश देकर सामाजिक न्याय के मार्ग को प्रशस्त करता है।

भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्यों का समावेश नागरिकता के आदर्शों को केवल विधिक संस्तर तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उन्हें राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में एक सक्रिय भागीदार के रूप में विस्थापित करता है। स्वर्ण सिंह समिति के सुझावों से प्रारंभ होकर 86वें संशोधन के सांख्यिकीय विस्तार तक, यह भाग भारत के 'लोकतांत्रिक शासन' को एक 'लोकतांत्रिक समाज' में बदलने की आधारशिला प्रस्तुत करता है।

अध्याय 20: संवैधानिक संशोधन प्रक्रिया (अनुच्छेद 368): साधारण, विशेष और आधे राज्यों के वैधानिक समर्थन का प्रतिरूप

भारतीय संविधान न तो पूरी तरह से लचीला है और न ही पूरी तरह से कठोर, बल्कि यह दोनों का एक अनूठा समन्वय है। संविधान के भाग XX के अंतर्गत अनुच्छेद 368 संसद को संविधान और इसकी प्रक्रियाओं को संशोधित करने की शक्ति प्रदान करता है। यह विधायी शक्ति सुनिश्चित करती है कि राष्ट्र का सर्वोच्च कानून बदलती सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठा सके।

1. संवैधानिक संशोधन की दार्शनिक और विधिक पृष्ठभूमि

संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया दक्षिण अफ्रीका के संविधान से प्रेरित है। इसका मूल उद्देश्य संविधान की जीवंतता बनाए रखना है। अनुच्छेद 368 स्पष्ट करता है कि संसद अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए इस संविधान के किसी भी उपबंध का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन (Repeal) कर सकती है। हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती मामले (1973) में यह विधिक सिद्धांत प्रतिपादित किया कि संसद संविधान के 'मूल ढांचे' (Basic Structure) में परिवर्तन नहीं कर सकती।

2. संशोधन की प्रक्रियात्मक गतिकी: अनिवार्य चरण

अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन की प्रक्रिया निम्नलिखित विनिर्दिष्ट चरणों में गतिक होती है:

- **विधेयक का प्रस्तुतीकरण:** संशोधन का प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन (लोकसभा या राज्यसभा) में पेश किया जा सकता है। इसे राज्य विधानमंडलों में पेश करने का कोई वैधानिक अधिकार नहीं है।
- **प्रस्तावक:** विधेयक किसी मंत्री द्वारा या किसी निजी सदस्य (Private Member) द्वारा पेश किया जा सकता है। इसके लिए राष्ट्रपति की पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है।
- **पृथक पारित होना:** विधेयक को दोनों सदनों में अलग-अलग पारित होना अनिवार्य है। यदि दोनों सदनों के बीच असहमति हो, तो साधारण विधेयकों की तरह 'संयुक्त बैठक' (Joint Sitting) बुलाने का कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं है।
- **राष्ट्रपति की सहमति:** दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बाद (और जहां आवश्यक हो, राज्य विधानमंडलों के अनुसमर्थन के बाद) विधेयक को राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। 24वें संविधान संशोधन अधिनियम (1971) के बाद राष्ट्रपति के लिए संविधान संशोधन विधेयक पर अपनी सहमति देना बाध्यकारी है; वे इसे न तो अपने पास रोक सकते हैं और न ही पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकते हैं।

3. संशोधन के त्रिविध वैधानिक प्रतिरूप

भारतीय संविधान में संशोधन के तीन स्पष्ट मार्ग विन्यासित हैं, जो इसकी प्रकृति को संतुलित करते हैं:

3.1 साधारण बहुमत द्वारा संशोधन (अनुच्छेद 368 की सीमा से बाहर)

संविधान के कई उपबंध संसद के साधारण बहुमत (उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों का 50% से अधिक) द्वारा संशोधित किए जा सकते हैं। तकनीकी रूप से इन्हें अनुच्छेद 368 के तहत 'संविधान संशोधन' नहीं माना जाता है।

प्रमुख विषय:

- नए राज्यों का प्रवेश या गठन।
- राज्यों की सीमाओं, नाम और क्षेत्र में परिवर्तन (अनुच्छेद 3)।
- राज्य विधान परिषदों का निर्माण या समाप्ति (अनुच्छेद 169)।
- संसद में गणपूर्ति (Quorum)।
- संसद सदस्यों के वेतन और भत्ते।
- नागरिकता की प्राप्ति और समाप्ति।
- अनुसूची 5 (अनुसूचित क्षेत्र) और अनुसूची 6 (जनजातीय क्षेत्र) का प्रशासन।

3.2 संसद के विशेष बहुमत द्वारा संशोधन

संविधान के अधिकांश हिस्सों में संशोधन इसी प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। इसके लिए प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत (50% से अधिक) तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों का कम से कम दो-तिहाई (2/3) बहुमत आवश्यक है।

प्रमुख विषय:

- मौलिक अधिकार (भाग III)।
- राज्य के नीति निर्देशक तत्व (भाग IV)।
- वे सभी अन्य प्रावधान जो प्रथम और तृतीय श्रेणी में शामिल नहीं हैं।

3.3 विशेष बहुमत और आधे राज्यों का अनुसमर्थन

संविधान के संघीय ढांचे (Federal Structure) को प्रभावित करने वाले प्रावधानों के लिए संसद के विशेष बहुमत के साथ-साथ कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों के साधारण बहुमत से पारित संकल्प की आवश्यकता होती है।

प्रमुख विषय:

- राष्ट्रपति का निर्वाचन और उसकी प्रक्रिया।
- संघ और राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार।
- उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय संबंधी प्रावधान।
- सातवीं अनुसूची की विधायी सूचियों (संघ, राज्य, समवर्ती) में कोई परिवर्तन।
- संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व (अनुसूची 4)।
- स्वयं अनुच्छेद 368 के प्रावधानों में संशोधन।

4. तुलनात्मक विश्लेषण: विभिन्न श्रेणियों का विन्यास

संशोधन प्रकार	का	आवश्यक विधायी शक्ति	संवैधानिक स्थिति	विषय का उदाहरण
साधारण बहुमत		उपस्थित व मतदान का 50%+1	अनुच्छेद 368 के बाहर	नए राज्यों का गठन
विशेष बहुमत		कुल का बहुमत + उपस्थित का 2/3	अनुच्छेद 368 के भीतर	मौलिक अधिकार
विशेष बहुमत + राज्य		विशेष बहुमत + 50% राज्यों की सहमति	अनुच्छेद 368 (संघीय)	GST परिषद, राष्ट्रपति चुनाव

5. संवैधानिक संशोधन प्रक्रिया की विसंगतियां और विधिक सीमाएं

यद्यपि प्रक्रिया सुस्पष्ट है, फिर भी इसमें कुछ विनियामक अंतराल देखे जाते हैं:

- **विशिष्ट निकाय का अभाव:** संयुक्त राज्य अमेरिका के विपरीत, भारत में संविधान संशोधन के लिए 'संवैधानिक सम्मेलन' या विशिष्ट निकाय का प्रावधान नहीं है। यह शक्ति केवल संसद में निहित है।
- **राज्यों की सीमित भूमिका:** राज्य संशोधन की प्रक्रिया शुरू नहीं कर सकते (केवल विधान परिषद के निर्माण/समाप्ति के अनुरोध को छोड़कर)।
- **समय सीमा का अभाव:** संविधान में यह उल्लेख नहीं है कि राज्य विधानमंडल कितने समय के भीतर संशोधन विधेयक पर अपनी सहमति देंगे।
- **संयुक्त बैठक का निषेध:** विधायी गतिरोध की स्थिति में संविधान संशोधन विधेयक का पतन हो जाता है, जो इसकी कठोरता को दर्शाता है।

6. महत्वपूर्ण संशोधन

भारतीय संविधान ने अपनी स्थापना से अब तक 106 से अधिक महत्वपूर्ण संशोधनों के माध्यम से अपनी गतिकी प्रदर्शित की है।

तालिका: प्रमुख हालिया संवैधानिक संशोधन

संशोधन क्रम	वर्ष	मुख्य विनियामक परिवर्तन
101वां संशोधन	2016	वस्तु एवं सेवा कर (GST) की शुरुआत
102वां संशोधन	2018	राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा
103वां संशोधन	2019	आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) के लिए 10% आरक्षण
104वां संशोधन	2020	SC/ST आरक्षण का विस्तार और एंग्लो-इंडियन मनोनयन की समाप्ति
105वां संशोधन	2021	राज्यों को अपनी OBC सूची बनाने की शक्ति की बहाली
106वां संशोधन	2023	नारी शक्ति वंदन अधिनियम (लोकसभा/विधानसभा में महिलाओं हेतु 33% आरक्षण)

7. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **संविधान की जीवंतता:** समाज की बदलती जरूरतों के अनुसार खुद को ढालने की क्षमता।
- **मूल ढांचा:** संविधान के वे स्तंभ जिन्हें संसद की संशोधनकारी शक्ति द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता (जैसे- न्यायपालिका की स्वतंत्रता, संघवाद)।
- **निजी सदस्य:** वह संसद सदस्य जो मंत्री पद पर नहीं है।
- **अनुसमर्थन:** राज्य विधानमंडलों द्वारा संशोधन विधेयक को अपनी औपचारिक विधिक स्वीकृति देना।
- **पॉकेट वीटो का निषेध:** राष्ट्रपति द्वारा संविधान संशोधन विधेयक को रोकने या पुनर्विचार के लिए न भेजने की विधिक स्थिति।

8. न्यायिक संवीक्षा और संशोधनकारी शक्तियों का संतुलन

सर्वोच्च न्यायालय ने संशोधनों की वैधता की जाँच करने के लिए समय-समय पर विनियामक सिद्धांतों का विकास किया है:

1. **शंकरा प्रसाद मामला (1951):** संसद मौलिक अधिकारों सहित संविधान के किसी भी हिस्से में संशोधन कर सकती है।
2. **गोलकनाथ मामला (1967):** संसद मौलिक अधिकारों में कटौती नहीं कर सकती।
3. **केशवानंद भारती मामला (1973):** संशोधन की शक्ति असीमित नहीं है; यह 'मूल ढांचे' के विधिक घेरे से बंधी है।
4. **मिनर्वा मिल्स मामला (1980):** संसद की संशोधन शक्ति स्वयं में सीमित है, इसलिए संसद अपनी इस सीमित शक्ति का प्रयोग करके उसे असीमित नहीं बना सकती।

9. संघीय ढांचे पर संशोधनों का प्रशासनिक प्रभाव

जब केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण प्रभावित होता है, तो आधे राज्यों की सहमति अनिवार्य होती है। यह प्रक्रिया सुनिश्चित करती है कि:

- केंद्र राज्यों की स्वायत्तता का एकपक्षीय हास न कर सके।
- राजकोषीय संघवाद (जैसे GST) में राज्यों की भागीदारी विधिक रूप से सुनिश्चित हो।
- न्यायिक नियुक्तियों या उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार में बदलाव के समय राज्यों की विधिक राय शामिल हो।

10. सारांश एवं भविष्योन्मुखी विन्यास

संविधान संशोधन की प्रक्रिया भारतीय राजव्यवस्था के लचीलेपन और स्थायित्व का दर्पण है। यह अनुच्छेद 368 संसद को वह यंत्र प्रदान करता है जिससे संविधान एक जड़ दस्तावेज के बजाय 'सामाजिक क्रांति का साधन' बना रहता है। वर्तमान में 106वें संशोधन तक की यात्रा यह दर्शाती है कि लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से जटिल मुद्दों (जैसे महिला आरक्षण या आर्थिक पिछड़ापन) का विधिक समाधान संभव है, बशर्ते वह संवैधानिक नैतिकता और मूल ढांचे के दायरे में हो।

अध्याय 21: मूल ढांचे का सिद्धांत (Basic Structure): न्यायिक पुनरावलोकन, गोलकनाथ से मिनर्वा मिल्स वाद तक की विकास यात्रा

भारतीय संविधान की जीवंतता और उसकी सर्वोच्चता को अक्षुण्ण रखने में 'मूल ढांचे के सिद्धांत' (Basic Structure Doctrine) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। यह सिद्धांत संसद की संविधान संशोधन की शक्ति और न्यायपालिका की संविधान की रक्षा करने की शक्ति के मध्य एक विधिक संतुलन का प्रतिरूप है।

1. विधिक पृष्ठभूमि और शक्ति का संघर्ष

संविधान के लागू होने के साथ ही यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या अनुच्छेद 368 के तहत संसद को प्राप्त संशोधन की शक्ति असीमित है? विशेषकर क्या संसद मौलिक अधिकारों (भाग III) को संशोधित या समाप्त कर सकती है? इस विधिक यात्रा का सूत्रपात प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 के माध्यम से हुआ, जिसे 'शंकरा प्रसाद बनाम भारत संघ' वाद में चुनौती दी गई। प्रारंभ में न्यायपालिका ने संसद की संशोधनकारी शक्ति को व्यापक माना, परंतु कालांतर में इसमें विवर्तनिक परिवर्तन आए।

2. गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967): न्यायिक सक्रियता का प्रथम संस्तर

यह वाद भारतीय संवैधानिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। 11 न्यायाधीशों की पीठ ने 6:5 के बहुमत से एक युगांतरकारी निर्णय दिया।

- **निर्णय का सार:** न्यायपालिका ने प्रतिपादित किया कि मौलिक अधिकार 'अलंघनीय' और 'अलौकिक' हैं। संसद अनुच्छेद 368 का प्रयोग करके मौलिक अधिकारों को न तो छीन सकती है और न ही उन्हें सीमित कर सकती है।
- **अनुच्छेद 13(2) की व्याख्या:** न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 368 के तहत पारित संविधान संशोधन भी अनुच्छेद 13 के अर्थ में एक 'विधि' (Law) है। अतः, यदि कोई संशोधन मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो वह शून्य होगा।
- **भविष्यलक्षी निर्णय का सिद्धांत (Prospective Overruling):** न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि यह निर्णय भविष्य के संशोधनों पर लागू होगा, पूर्व के संशोधनों पर नहीं।

3. 24वां और 25वां संविधान संशोधन अधिनियम (1971)

गोलकनाथ वाद के निर्णय के प्रभाव को समाप्त करने के लिए तत्कालीन सरकार ने संविधान में महत्वपूर्ण संशोधन किए:

- **24वां संशोधन:** अनुच्छेद 13 और अनुच्छेद 368 में संशोधन कर यह स्पष्ट किया गया कि संसद को मौलिक अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने की पूर्ण शक्ति है और ऐसा संशोधन अनुच्छेद 13 के अंतर्गत 'विधि' नहीं माना जाएगा।
- **25वां संशोधन:** अनुच्छेद 31-C जोड़ा गया, जिसमें प्रावधान किया गया कि यदि कोई विधि अनुच्छेद 39 (b) और (c) के नीति निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए बनाई गई है, तो उसे अनुच्छेद 14, 19 और 31 के उल्लंघन के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकेगी।

4. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973): मूल ढांचे का उदय

यह भारतीय न्यायिक इतिहास का सबसे वृहद वाद था, जिसकी सुनवाई 13 न्यायाधीशों की पीठ ने की। 7:6 के बहुमत से दिए गए इस निर्णय ने 'मूल ढांचे के सिद्धांत' को जन्म दिया।

- **संसद की शक्ति की मान्यता:** न्यायालय ने 24वें संशोधन को वैध माना और स्वीकार किया कि संसद संविधान के किसी भी भाग (मौलिक अधिकारों सहित) को संशोधित कर सकती है।
- **विधिक सीमा (मूल ढांचा):** न्यायालय ने एक ऐतिहासिक सीमा रेखा खींची—संसद संविधान में संशोधन तो कर सकती है, परंतु उसके '**मूल ढांचे**' (**Basic Structure**) को नष्ट, विखंडित या परिवर्तित नहीं कर सकती।
- **न्यायिक पुनरावलोकन:** न्यायालय ने 25वें संशोधन के उस भाग को असंवैधानिक घोषित कर दिया जिसने न्यायिक समीक्षा के अधिकार को छीन लिया था। यह स्पष्ट किया गया कि 'न्यायिक पुनरावलोकन' स्वयं मूल ढांचे का हिस्सा है।

5. इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण वाद (1975)

आपातकाल के दौरान 39वें संविधान संशोधन द्वारा यह प्रावधान किया गया कि प्रधानमंत्री और लोकसभा अध्यक्ष के चुनाव संबंधी विवादों को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

- **निर्णय:** सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती वाद के सिद्धांत का प्रयोग करते हुए इस संशोधन को रद्द कर दिया। न्यायालय ने घोषित किया कि 'स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव' तथा 'न्यायिक पुनरावलोकन' संविधान के मूल ढांचे का अटूट हिस्सा हैं।

6. 42वां संविधान संशोधन (1976) और मिनर्वा मिल्स वाद (1980)

42वें संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 368 में खंड (4) और (5) जोड़े गए, जिनमें कहा गया कि संसद की संशोधन शक्ति की कोई सीमा नहीं है और किसी भी संशोधन को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

- **मिनर्वा मिल्स निर्णय:** सर्वोच्च न्यायालय ने इन खंडों को असंवैधानिक घोषित कर दिया।
- **संतुलन का सिद्धांत:** न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि 'संसद की सीमित संशोधन शक्ति' स्वयं मूल ढांचे का हिस्सा है। एक सीमित शक्ति का प्रयोग करके संसद अपनी शक्ति को 'असीमित' नहीं बना सकती।
- **मौलिक अधिकार और नीति निदेशक तत्व:** न्यायालय ने स्पष्ट किया कि भारतीय संविधान मौलिक अधिकारों (भाग III) और नीति निदेशक तत्वों (भाग IV) के बीच '**संतुलन**' की आधारशिला पर टिका है।

7. वामन राव बनाम भारत संघ (1981): समय सीमा का निर्धारण

इस वाद में न्यायालय ने मूल ढांचे के सिद्धांत के अनुप्रयोग की समय सीमा स्पष्ट की।

- **कट-ऑफ तिथि:** न्यायालय ने घोषित किया कि मूल ढांचे का सिद्धांत **24 अप्रैल 1973** (केशवानंद भारती निर्णय की तिथि) के बाद पारित होने वाले सभी संविधान संशोधनों पर लागू होगा।

8. मूल ढांचे के प्रमुख तत्व: एक तुलनात्मक विश्लेषण

यद्यपि न्यायालय ने मूल ढांचे की कोई औपचारिक परिभाषा नहीं दी है, परंतु विभिन्न निर्णयों के माध्यम से इसके घटकों को स्पष्ट किया गया है:

क्र.सं.	मूल ढांचे के घटक	संबंधित ऐतिहासिक वाद
1	संविधान की सर्वोच्चता	केशवानंद भारती वाद (1973)

2	गणतांत्रिक और लोकतांत्रिक स्वरूप	केशवानंद भारती वाद (1973)
3	शक्तियों का पृथक्करण	केशवानंद भारती वाद (1973)
4	धर्मनिरपेक्षता	एस.आर. बोम्मई वाद (1994)
5	संघीय ढांचा	एस.आर. बोम्मई वाद (1994)
6	न्यायिक पुनरावलोकन	मिनर्वा मिल्स वाद (1980)
7	स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव	इंदिरा गांधी बनाम राज नारायण (1975)
8	व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता	केशवानंद भारती वाद (1973)
9	विधि का शासन	वामन राव वाद (1981)
10	संसदीय प्रणाली	केशवानंद भारती वाद (1973)

9. न्यायिक पुनरावलोकन (Judicial Review): विधिक गतिकी

न्यायिक पुनरावलोकन वह शक्ति है जिसके माध्यम से न्यायपालिका विधायी अधिनियमों और कार्यपालिका के आदेशों की संवैधानिक वैधता की जाँच करती है।

- **संवैधानिक आधार:** यद्यपि 'न्यायिक पुनरावलोकन' शब्द का संविधान में प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है, परंतु अनुच्छेद 13, 32, 131-136, 143, 226 और 246 इसे सुदृढ़ विधिक आधार प्रदान करते हैं।
- **महत्व:** यह संविधान की सर्वोच्चता बनाए रखने, संघीय संतुलन की रक्षा करने और नागरिकों के मौलिक अधिकारों के संरक्षण हेतु अनिवार्य है।
- **एल. चंद्र कुमार वाद (1997):** न्यायालय ने पुनः पुष्टि की कि अनुच्छेद 32 और 226 के तहत न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति संविधान के मूल ढांचे का अभिन्न अंग है।

10. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **मैग्रा कार्टा:** अधिकारों का वह चार्टर जिसके माध्यम से जन अधिकारों को वैधानिक मान्यता मिली (भारतीय संदर्भ में भाग III)।
- **अलंघनीय शक्ति:** वह शक्ति जिसे सामान्य विधायी प्रक्रिया से न बदला जा सके।
- **प्रक्रियात्मक औचित्य:** कानून बनाने की वह विधि जो तर्कसंगत और न्यायपूर्ण हो।
- **अति-व्यापकता (Over-reach):** जब एक अंग दूसरे अंग के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप करे।

- **संवैधानिक नैतिकता:** संविधान के मूल्यों और लोकतांत्रिक परंपराओं के प्रति निष्ठा।

11. ऐतिहासिक विकास यात्रा का सारांश

वर्ष	ऐतिहासिक घटना / वाद	मुख्य विधिक परिणाम
1951	शंकर प्रसाद वाद	संसद मौलिक अधिकारों को संशोधित कर सकती है।
1967	गोलकनाथ वाद	संसद मौलिक अधिकारों को संशोधित नहीं कर सकती।
1971	24वां संशोधन	संसद की संशोधन शक्ति को पुनः व्यापक बनाया गया।
1973	केशवानंद भारती वाद	मूल ढांचे का सिद्धांत प्रतिपादित; संशोधन शक्ति सीमित हुई।
1975	इंदिरा गांधी वाद	स्वतंत्र चुनाव को मूल ढांचा घोषित किया गया।
1980	मिनर्वा मिल्स वाद	'सीमित संशोधन शक्ति' को मूल ढांचा माना गया।
2014	99वां संशोधन (NJAC)	न्यायपालिका की स्वतंत्रता के उल्लंघन के आधार पर रद्द।

12. वर्तमान प्रासंगिकता और प्रशासनिक निहितार्थ

मूल ढांचे का सिद्धांत केवल एक विधिक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह शासन के संचालन हेतु एक विनियामक प्रकाशस्तंभ है। यह सुनिश्चित करता है कि:

1. कार्यपालिका और विधायिका अपनी शक्तियों का प्रयोग संवैधानिक मर्यादाओं के भीतर करें।
2. बहुमत की राजनीति संविधान के मूलभूत दर्शन (जैसे धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र) को नष्ट न कर पाए।
3. प्रशासनिक निर्णयों में 'विधि का शासन' और 'न्याय तक पहुँच' का सदैव पालन हो।

यह सिद्धांत संविधान की 'आत्मा' को समय की बदलती धाराओं से सुरक्षित रखता है और यह सुनिश्चित करता है कि संविधान एक जड़ दस्तावेज न रहकर एक जीवंत और विकासशील विलेख बना रहे।

wincompete

अध्याय 22: भारतीय संघीय ढांचा: केंद्र-राज्य विधिक और प्रशासनिक संबंध

1. संघीय ढांचे का संवैधानिक विन्यास एवं सातवीं अनुसूची

भारतीय संविधान के भाग XI और XII केंद्र और राज्यों के बीच विधिक, प्रशासनिक और वित्तीय संबंधों के ऊर्ध्वाधर ढांचे को परिभाषित करते हैं। भारत ने "विनाशी राज्यों के अविनाशी संघ" के प्रतिरूप को अपनाया है, जिसमें संघीय सिद्धांत और एकात्मक झुकाव का एक अद्वितीय संश्लेषण विद्यमान है। सातवीं अनुसूची के अंतर्गत शक्तियों का त्रिविध विभाजन इस संघीय ढांचे की वैधानिक आधारशिला है।

सातवीं अनुसूची: विधायी शक्तियों का आनुपातिक विभाजन

विधायी सूची	मूल विषय संख्या	वर्तमान विषय संख्या	विधायी क्षेत्राधिकार
संघ सूची (Union List)	97	100	केवल संसद
राज्य सूची (State List)	66	61	सामान्यतः राज्य विधानमंडल
समवर्ती सूची (Concurrent List)	47	52	संसद एवं राज्य विधानमंडल दोनों

- **विशिष्ट विनियामक तथ्य:** 42वें संविधान संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा पाँच विषयों (शिक्षा, वन, नाप-तौल, वन्यजीव संरक्षण और न्याय प्रशासन) को राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित किया गया था।

2. केंद्र-राज्य विधिक संबंध (अनुच्छेद 245-255)

विधिक संबंधों का मुख्य आधार विधायी क्षेत्राधिकार का सीमांकन है। संविधान के अनुच्छेद 245 के अनुसार, संसद संपूर्ण भारत या उसके किसी भाग के लिए कानून बना सकती है, जबकि राज्य विधानमंडल केवल संबंधित राज्य की भौगोलिक सीमाओं के भीतर कानून बनाने हेतु अधिकृत हैं।

2.1 विधायी सर्वोच्चता और डॉक्ट्रिन ऑफ रिपगनेंसी (अनुच्छेद 254)

समवर्ती सूची के विषयों पर यदि केंद्र और राज्य के कानूनों के बीच विरोधाभास उत्पन्न होता है, तो संघीय कानून को विधिक सर्वोच्चता प्राप्त होती है। हालांकि, यदि राज्य के कानून को राष्ट्रपति की पूर्व सहमति प्राप्त हो, तो संबंधित राज्य की सीमाओं में राज्य कानून प्रभावी रह सकता है।

2.2 संसद का राज्य सूची पर विशिष्ट विधायी क्षेत्राधिकार

असाधारण परिस्थितियों में संसद राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकती है:

- **अनुच्छेद 249:** यदि राज्यसभा दो-तिहाई बहुमत से संकल्प पारित करे कि कोई विषय 'राष्ट्रीय महत्व' का है। (वैधता: 1 वर्ष)
- **अनुच्छेद 250:** राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान संसद की संपूर्ण विधायी सर्वोच्चता।
- **अनुच्छेद 252:** दो या दो से अधिक राज्यों के अनुरोध पर साझा कानून निर्माण।
- **अनुच्छेद 253:** अंतरराष्ट्रीय संधियों और समझौतों के कार्यान्वयन हेतु।
- **अनुच्छेद 356:** राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्य की विधायी शक्तियों का संसद को हस्तांतरण।

3. केंद्र-राज्य प्रशासनिक संबंध (अनुच्छेद 256-263)

प्रशासनिक संबंधों का उद्देश्य संघीय कानून के अनुपालन और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करना है।

3.1 अनुपालन और निर्देश की विधिक गतिकी

- **अनुच्छेद 256:** प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार होगा कि संसद द्वारा निर्मित कानूनों का अनुपालन सुनिश्चित हो।
- **अनुच्छेद 257:** राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करेंगे कि संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में कोई बाधा न आए। केंद्र राज्यों को संचार साधनों के रख-रखाव और रेलवे की सुरक्षा हेतु निर्देश दे सकता है।
- **अनुच्छेद 365:** यदि कोई राज्य केंद्र द्वारा दिए गए संवैधानिक निर्देशों का पालन करने में विफल रहता है, तो राष्ट्रपति यह मान सकते हैं कि राज्य का शासन संविधान के प्रावधानों के अनुरूप नहीं चलाया जा सकता (राष्ट्रपति शासन का आधार)।

3.2 अखिल भारतीय सेवाएँ और एकीकृत न्यायपालिका

- **अनुच्छेद 312:** राज्यसभा के प्रस्ताव पर नई अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन। इन सेवाओं के सदस्य राज्यों में तैनात होते हैं, परंतु उन पर अंतिम विनियामक नियंत्रण केंद्र का होता है।
- **एकीकृत न्यायिक तंत्र:** भारत में पृथक संघीय और राज्य न्यायालयों के बजाय एक एकीकृत न्यायिक पिरामिड है, जहाँ केंद्रीय और राज्य दोनों कानूनों को समान रूप से लागू किया जाता है।

4. सातवीं अनुसूची का वित्तीय विन्यास (अनुच्छेद 268-293)

वित्तीय संबंधों का विन्यास अत्यधिक जटिल है, जिसे 'राजकोषीय संघवाद' (Fiscal Federalism) कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व के स्रोतों का वैज्ञानिक आवंटन करना है।

4.1 करों का आनुपातिक वितरण प्रतिरूप

अनुच्छेद	कर की प्रकृति	संग्रहकर्ता	उपभोगकर्ता / वितरण
268	स्टांप शुल्क और औषधीय प्रसाधन कर	केंद्र (लगाना)	राज्य (संग्रह और उपयोग)
269	अंतर्राज्यीय व्यापार पर कर	केंद्र	राज्यों को सौंप दिया जाता है
270	आयकर (कृषि आय को छोड़कर)	केंद्र	केंद्र और राज्यों के बीच विभाजन

4.2 वस्तु एवं सेवा कर (GST) और 101वां संशोधन

संवैधानिक संशोधन अधिनियम 2016 द्वारा अनुच्छेद 246A, 269A और 279A जोड़े गए। इसने वित्तीय संबंधों में "सहयोगपूर्ण संघवाद" के नए युग का सूत्रपात किया। **अनुच्छेद 279A** के तहत 'GST परिषद' का गठन किया गया, जो करों की दरों और छूट के निर्धारण हेतु एक संप्रभु संघीय निकाय है।

5. वित्तीय संतुलन के संस्थागत तंत्र

5.1 वित्त आयोग (Finance Commission - अनुच्छेद 280)

राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक पांच वर्ष में गठित एक संवैधानिक निकाय।

- **मुख्य कार्य:** केंद्र और राज्यों के बीच करों के शुद्ध आगमों का वितरण तय करना और राज्यों को दी जाने वाली सहायता अनुदान (Grants-in-aid) के सिद्धांतों का निर्धारण करना।
- **सांख्यिकीय डेटा:** 15वें वित्त आयोग (एन.के. सिंह समिति) ने केंद्रीय करों में राज्यों की हिस्सेदारी 41% निर्धारित की है।

5.2 सहायता अनुदान (Grants-in-aid)

- **विधिक अनुदान (अनुच्छेद 275):** संसद द्वारा उन राज्यों को दिया जाता है जिन्हें वित्तीय सहायता की आवश्यकता है। यह संचित निधि पर भारित होता है।
- **विवेकाधीन अनुदान (अनुच्छेद 282):** केंद्र और राज्य दोनों किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अनुदान दे सकते हैं।

6. विवाद समाधान और संघीय समन्वय तंत्र

केंद्र और राज्यों के बीच विवादों के शमन हेतु संविधान में विशिष्ट संस्थागत कड़ियाँ विन्यासित हैं:

- **अंतर-राज्यीय परिषद (Inter-State Council - अनुच्छेद 263):** राष्ट्रपति द्वारा गठित। इसका उद्देश्य केंद्र और राज्यों के बीच साझा हितों के विषयों पर जांच और विमर्श करना है। सरकारी आयोग की सिफारिश पर 1990 में पहली बार इसका स्थायी गठन हुआ।
- **नदी जल विवाद (अनुच्छेद 262):** अंतरराज्यीय नदियों के जल के बंटवारे से संबंधित विवादों हेतु संसद कानून बनाकर विशिष्ट न्यायाधिकरण (Tribunal) गठित कर सकती है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय का हस्तक्षेप वर्जित किया जा सकता है।
- **क्षेत्रीय परिषदें (Zonal Councils):** ये राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के तहत वैधानिक निकाय हैं। गृह मंत्री इनके अध्यक्ष होते हैं।

7. केंद्र-राज्य संबंधों पर प्रमुख आयोगों का विश्लेषण

केंद्र और राज्यों के बीच असंतुलन को दूर करने के लिए समय-समय पर महत्वपूर्ण विनियामक समितियों का गठन किया गया है:

आयोग / समिति	वर्ष	मुख्य सिफारिशें
प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC)	1966	अनुच्छेद 356 का प्रयोग अंतिम विकल्प के रूप में करने का सुझाव।
राजमन्त्रार समिति (तमिलनाडु)	1969	अवशिष्ट शक्तियों को राज्यों को देने और अंतर-राज्यीय परिषद के गठन की मांग।
सरकारी आयोग	1983	सशक्त केंद्र की वकालत, परंतु राज्यपाल की नियुक्ति में मुख्यमंत्री की सलाह अनिवार्य करने का सुझाव।
पुंछी आयोग	2007	राज्यपालों का निश्चित कार्यकाल और अनुच्छेद 355-356 के प्रयोग हेतु कठोर मानदंडों का प्रस्ताव।

8. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers):** अनुच्छेद 248 के तहत वे विषय जो तीनों सूचियों में शामिल नहीं हैं। भारत में ये शक्तियां संसद (केंद्र) में निहित हैं।
- **राजकोषीय संघवाद:** संसाधनों का केंद्र और राज्यों के बीच ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज वितरण।
- **सहयोगपूर्ण संघवाद (Cooperative Federalism):** केंद्र और राज्यों का एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी होने के बजाय पूरक के रूप में कार्य करना।
- **डॉक्ट्रिन ऑफ़ टेरिटोरियल नेक्सस:** राज्य का कानून राज्य के बाहर भी प्रभावी हो सकता है यदि उस विषय का राज्य के साथ गहरा संबंध हो।
- **अधिग्रहण (Eminent Domain):** राज्य की वह संप्रभु शक्ति जिसके तहत वह लोक हित में निजी संपत्ति अधिग्रहीत कर सकता है।

9. संघीय ढांचे की चुनौतियां और प्रशासनिक गतिकी

वर्तमान प्रशासनिक पारि-पारिस्थितिकी में संघीय संबंधों के समक्ष कई नवीन चुनौतियां उभरी हैं:

- **राज्यपाल की भूमिका:** अनुच्छेद 356 के प्रयोग और विधेयकों को राष्ट्रपति हेतु सुरक्षित रखने (अनुच्छेद 200) को लेकर विवाद।

- **केंद्रीय जांच एजेंसियां:** CBI, ED जैसी एजेंसियों के क्षेत्राधिकार को लेकर राज्यों की आपत्तियां।
- **वित्तीय निर्भरता:** उपकरों (Cess) और अधिभारों (Surcharge) के माध्यम से केंद्र द्वारा राजस्व का संकेंद्रीकरण, जो विभाज्य पूल (Divisible Pool) का हिस्सा नहीं होते।

10. तुलनात्मक तालिका: विधिक एवं प्रशासनिक संबंधों का विश्लेषण

आयाम	विधिक संबंध (विधायी)	प्रशासनिक संबंध (कार्यपालिका)
प्राथमिक अनुच्छेद	245 - 255	256 - 263
मुख्य यंत्र	सातवीं अनुसूची की सूचियाँ	निर्देश जारी करने की शक्ति
असाधारण शक्ति	अनुच्छेद 249, 250, 252	अनुच्छेद 356, 365
विवाद समाधान	सर्वोच्च न्यायालय (प्रारंभिक क्षेत्राधिकार)	अंतर-राज्यीय परिषद
उद्देश्य	शक्तियों का विकेंद्रीकरण	प्रशासनिक समन्वय एवं एकता

भारतीय संघीय ढांचा विधिक रूप से केंद्र को अधिक शक्तिशाली बनाता है, परंतु वास्तविक प्रशासनिक गतिकी में "राजकोषीय संघवाद" और "सहयोगपूर्ण संघवाद" के सिद्धांतों के बिना इसका संचालन संभव नहीं है। सातवीं अनुसूची का वित्तीय विन्यास यह सुनिश्चित करता है कि राज्यों के पास अपने विकासात्मक कार्यों हेतु पर्याप्त संसाधन हों, जबकि विधिक और प्रशासनिक संबंध राष्ट्र की अखंडता को अभेद्य वैधानिक सुरक्षा कवच प्रदान करते हैं।

अध्याय 23: अंतर-राज्यीय संबंध: अंतर-राज्यीय परिषद, क्षेत्रीय परिषदें और नदी जल विवादों का विनियामक नियमन

भारतीय संघीय व्यवस्था की सफलता केंद्र और राज्यों के बीच समन्वय के साथ-साथ राज्यों के परस्पर सहयोग पर भी टिकी है। संविधान के भाग XI के अंतर्गत 'अंतर-राज्यीय संबंधों' का विन्यास किया गया है, जिसका उद्देश्य राज्यों के मध्य उत्पन्न होने वाले विधिक और प्रशासनिक गतिरोधों का शमन करना तथा 'सहयोगपूर्ण संघवाद' को अभेद्य वैधानिक आधारशिला प्रदान करना है।

1. अंतर-राज्यीय परिषद (Inter-State Council): अनुच्छेद 263

संविधान का अनुच्छेद 263 राष्ट्रपति को एक 'अंतर-राज्यीय परिषद' के गठन की संप्रभु शक्ति प्रदान करता है। यह एक संवैधानिक संस्था है, जिसका प्राथमिक विधिक दायित्व राज्यों के साझा हितों के विषयों पर जांच और विमर्श करना है।

1.1 वैधानिक स्थापना और विकासक्रम

- **संवैधानिक प्रावधान:** अनुच्छेद 263 के तहत यदि राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि ऐसी परिषद के गठन से सार्वजनिक हित सधेगा, तो वह इसके कर्तव्यों और संगठन को विनिर्दिष्ट कर सकता है।
- **सरकारी आयोग की सिफारिश:** यद्यपि यह प्रावधान 1950 से विद्यमान था, परंतु इसका वास्तविक और स्थायी गठन 1990 में 'सरकारी आयोग' (1983-88) की सिफारिशों के आधार पर किया गया।

1.2 परिषद का प्रशासनिक ढांचा

परिषद की संरचना 'सहयोगपूर्ण संघवाद' के सिद्धांत को परिलक्षित करती है:

- **अध्यक्ष:** भारत के प्रधानमंत्री।
- **सदस्य:** सभी राज्यों के मुख्यमंत्री, विधानसभा वाले केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री, तथा बिना विधानसभा वाले केंद्र शासित प्रदेशों के प्रशासक।
- **केंद्रीय प्रतिनिधित्व:** प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत कैबिनेट स्तर के 6 केंद्रीय मंत्री।

1.3 विनियामक कार्य और विधिक क्षेत्राधिकार

परिषद के तीन मुख्य विधिक कर्तव्य विनिर्दिष्ट हैं:

1. राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले संभावित विवादों की जांच करना और उन पर सलाह देना।
2. उन विषयों की जांच और चर्चा करना जिनमें संघ और राज्यों का साझा हित हो।
3. नीति और कार्यवाही के बेहतर समन्वय के लिए संस्तुतियां प्रस्तुत करना।

2. क्षेत्रीय परिषदें (Zonal Councils): वैधानिक कड़ियाँ

क्षेत्रीय परिषदें अंतर-राज्यीय परिषद से इस अर्थ में भिन्न हैं कि ये **संवैधानिक निकाय नहीं हैं**, बल्कि **वैधानिक निकाय (Statutory Bodies)** हैं।

2.1 विधायी आधार और भौगोलिक विन्यास

- **राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956:** इन परिषदों का निर्माण संसद द्वारा पारित राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के माध्यम से किया गया।
- **उद्देश्य:** भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के बाद उपजे क्षेत्रीय तनावों को कम करना और अंतर-राज्यीय सहयोग को क्षेत्रीय स्तर पर गतिक बनाना।

2.2 परिषदों का सांख्यिकीय और प्रादेशिक विभाजन

परिषद का नाम	मुख्यालय	शामिल राज्य / केंद्र शासित प्रदेश
उत्तरी क्षेत्रीय परिषद	नई दिल्ली	हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, चंडीगढ़, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख।
मध्य क्षेत्रीय परिषद	प्रयागराज	उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश।
पूर्वी क्षेत्रीय परिषद	कोलकाता	बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिशा।
पश्चिमी क्षेत्रीय परिषद	मुंबई	गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, दादरा-नगर हवेली तथा दमन-दीव।
दक्षिणी क्षेत्रीय परिषद	चेन्नई	आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, तेलंगाना, पुडुचेरी।

2.3 उत्तर-पूर्वी परिषद (North-Eastern Council)

यह 1956 के अधिनियम का हिस्सा नहीं है। इसका गठन एक पृथक विधिक विलेख 'उत्तर-पूर्वी परिषद अधिनियम, 1971' के माध्यम से किया गया। इसमें सिक्किम, असम, मणिपुर, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मेघालय और त्रिपुरा शामिल हैं।

2.4 प्रशासनिक विन्यास

- **अध्यक्ष:** केंद्रीय गृह मंत्री (सभी पांचों परिषदों के साझा अध्यक्ष)।
- **उपाध्यक्ष:** संबंधित क्षेत्र के राज्यों के मुख्यमंत्री (एक वर्ष के कार्यकाल हेतु रोटेशन के आधार पर)।

3. अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद (Inter-State Water Disputes): अनुच्छेद 262

भारत के भौगोलिक विन्यास में नदियाँ राज्यों की सीमाओं का अतिक्रमण करती हैं, जिससे जल के आनुपातिक उपयोग को लेकर तीक्ष्ण विधिक गतिरोध उत्पन्न होते हैं। अनुच्छेद 262 इस जटिल विनियामक समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है।

3.1 संवैधानिक और विधायी प्रावधान

- **अनुच्छेद 262 (1):** संसद कानून बनाकर किसी अंतर-राज्यीय नदी या नदी घाटी के जल के उपयोग, वितरण या नियंत्रण के संबंध में किसी भी विवाद के न्यायनिर्णयन (Adjudication) के लिए विधिक प्रावधान कर सकती है।
- **अनुच्छेद 262 (2):** संसद यह विधिक प्रावधान कर सकती है कि ऐसे किसी विवाद में **न तो उच्चतम न्यायालय और न ही कोई अन्य न्यायालय** अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करेगा।

3.2 संसद द्वारा विनिर्मित प्रमुख अधिनियम

संसद ने अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए दो महत्वपूर्ण विधिक संस्तर तैयार किए हैं:

1. **नदी बोर्ड अधिनियम, 1956:** अंतर-राज्यीय नदियों के नियमन और विकास हेतु बोर्डों की स्थापना के लिए।
2. **अंतर-राज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956:** विवाद उत्पन्न होने की स्थिति में विशिष्ट 'जल विवाद न्यायाधिकरण' (Water Dispute Tribunal) के गठन हेतु।

3.3 प्रमुख जल विवाद न्यायाधिकरणों का सांख्यिकीय विवरण

न्यायाधिकरण का नाम	गठन वर्ष	संबद्ध राज्य
कृष्णा जल विवाद (I)	1969	महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश।
गोदावरी जल विवाद	1969	महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, ओडिशा।
नर्मदा जल विवाद	1969	राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र।
कावेरी जल विवाद	1990	कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, पुडुचेरी।
रावी एवं ब्यास विवाद	1986	पंजाब, हरियाणा, राजस्थान।

महादयी जल विवाद	2010	गोवा, कर्नाटक, महाराष्ट्र।
-----------------	------	----------------------------

4. विधिक और प्रशासनिक गतिकी के अन्य आयाम

4.1 सार्वजनिक विलेख, अभिलेख और न्यायिक कार्यवाहियां (अनुच्छेद 261)

संपूर्ण भारत के राज्यक्षेत्र में संघ और प्रत्येक राज्य के सार्वजनिक विलेखों (Public Acts), अभिलेखों (Records) और न्यायिक कार्यवाहियों को 'पूर्ण विश्वास और साख' (Full Faith and Credit) विधिक रूप से प्रदान की जाएगी।

4.2 अंतर-राज्यीय व्यापार, वाणिज्य और समागम (अनुच्छेद 301-307)

- **अनुच्छेद 301:** भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र व्यापार, वाणिज्य और समागम निर्बाध होगा।
- **विधिक सीमा:** संसद जनहित में अंतर-राज्यीय व्यापार पर युक्तियुक्त निर्बंधन (Reasonable Restrictions) लगा सकती है।

5. तुलनात्मक विश्लेषण तालिका: अंतर-राज्यीय बनाम क्षेत्रीय परिषदें

आधार	अंतर-राज्यीय परिषद	क्षेत्रीय परिषदें
संवैधानिक स्थिति	संवैधानिक (अनुच्छेद 263)	वैधानिक (संसदीय अधिनियम द्वारा)
गठन का आधार	राष्ट्रपति का आदेश (1990)	राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956
अध्यक्ष	प्रधानमंत्री	केंद्रीय गृह मंत्री
प्रकृति	राष्ट्रीय स्तर का समन्वय निकाय	क्षेत्रीय विशिष्टता आधारित समन्वय
क्षेत्राधिकार	संघ और सभी राज्यों का साझा विन्यास	विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों तक सीमित

6. नदी जल विवादों के विनियामक नियमन की चुनौतियां

न्यायाधिकरणों के गठन के बावजूद जल विवादों का समाधान विधिक रूप से चुनौतीपूर्ण बना हुआ है, जिसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:

- **निर्णय में सांख्यिकीय विलंब:** न्यायाधिकरणों द्वारा अंतिम पंचाट (Award) देने में दशकों का समय हास होता है।
- **विधिक सर्वोच्चता का अभाव:** यद्यपि अनुच्छेद 262 न्यायालयों को वर्जित करता है, परंतु राज्य अनुच्छेद 136 (विशेष अनुमति याचिका) के माध्यम से अक्सर उच्चतम न्यायालय पहुँच जाते हैं।
- **पुनर्गठन का प्रभाव:** आंध्र प्रदेश और तेलंगाना जैसे राज्यों के पुनर्गठन ने पूर्ववर्ती जल आवंटन के विन्यास को जटिल बना दिया है।

7. महत्वपूर्ण विधिक डेटा और प्रशासनिक कड़ियाँ

- **वित्त आयोग और अंतर-राज्यीय संबंध:** वित्त आयोग (अनुच्छेद 280) राज्यों के बीच राजस्व के क्षैतिज वितरण (Horizontal Distribution) द्वारा वित्तीय गतिरोधों को कम करता है।

- **आर्टिकल 131:** यदि दो राज्यों के मध्य विधिक क्षेत्राधिकार को लेकर कोई प्रत्यक्ष विवाद हो, तो उच्चतम न्यायालय का प्रारंभिक अनन्य क्षेत्राधिकार सक्रिय हो जाता है (नदी जल विवादों को छोड़कर)।
- **सहयोगपूर्ण संघवाद (Cooperative Federalism):** नीति आयोग की शासी परिषद (Governing Council) भी अब अंतर-राज्यीय समन्वय के एक महत्वपूर्ण और नवीन प्रशासनिक मंच के रूप में विस्थापित हुई है।

8. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **अधिग्रहण (Adjudication):** किसी विधिक विवाद का औपचारिक न्यायिक निर्णय।
- **सहयोगपूर्ण संघवाद:** केंद्र और राज्यों के मध्य प्रतिस्पर्धी होने के बजाय पूरक के रूप में कार्य करने का विनियामक ढांचा।
- **क्षेत्रीय संप्रभुता:** जल विवादों के संदर्भ में राज्यों का अपनी भौगोलिक सीमाओं के भीतर प्राकृतिक संसाधनों पर विधिक दावा।
- **पूर्ण विश्वास और साख:** एक राज्य के विधिक दस्तावेजों को दूसरे राज्य में वैधानिक मान्यता प्राप्त होने का सिद्धांत।
- **न्यायाधिकरण (Tribunal):** विशिष्ट तकनीकी या प्रशासनिक विवादों के समाधान हेतु गठित अर्ध-न्यायिक निकाय।

9. सारांश और भविष्योन्मुखी विन्यास

अंतर-राज्यीय संबंधों का विनियामक ढांचा भारतीय लोकतंत्र की रक्षात्मक दीवार है। जहाँ अंतर-राज्यीय परिषद और क्षेत्रीय परिषदें संवाद के माध्यम से प्रशासनिक गतिरोधों को सुलझाती हैं, वहीं अनुच्छेद 262 और न्यायाधिकरणों का विन्यास जल जैसे संवेदी संसाधनों के आनुपातिक वितरण को विधिक स्थायित्व प्रदान करता है। स्वतंत्र और निष्पक्ष विधिक प्रणालियों के माध्यम से राज्यों के मध्य विश्वास का विनिर्माण ही भारत के संघीय ढांचे को अभेद्य वैधानिक आधारशिला प्रदान करता है।

अध्याय 24: वित्तीय संघवाद: वस्तु एवं सेवा कर (GST) परिषद का वैधानिक विन्यास और 16वां वित्त आयोग

भारतीय राजव्यवस्था में वित्तीय संघवाद (Fiscal Federalism) का आशय केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय संसाधनों के वैज्ञानिक और न्यायसंगत बंटवारे से है। भारत के संविधान के भाग XII में अनुच्छेद 264 से 300 तक वित्तीय संबंधों का विस्तृत विवरण दिया गया है। आधुनिक काल में वित्तीय संघवाद के दो सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ **वस्तु एवं सेवा कर (GST) परिषद** और **वित्त आयोग** हैं, जो सहकारी संघवाद (Cooperative Federalism) को अभेद्य वैधानिक आधार प्रदान करते हैं।

1. वस्तु एवं सेवा कर (GST) परिषद: वैधानिक विन्यास एवं कार्यप्रणाली

101वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2016 द्वारा भारत में वस्तु एवं सेवा कर (GST) को लागू किया गया। इसी संशोधन के माध्यम से संविधान में **अनुच्छेद 279A** को अंतःस्थापित किया गया, जो 'GST परिषद' के गठन का विधिक आधार है।

1.1 परिषद की संरचना (Composition)

GST परिषद एक संयुक्त मंच है जिसमें केंद्र और राज्यों का साझा प्रतिनिधित्व होता है:

- **अध्यक्ष:** केंद्रीय वित्त मंत्री।
- **सदस्य (केंद्र):** केंद्रीय वित्त राज्य मंत्री (राजस्व या वित्त के प्रभारी)।
- **सदस्य (राज्य):** प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा नामित वित्त या कराधान मंत्री या कोई अन्य मंत्री।
- **उपाध्यक्ष:** परिषद के राज्य मंत्रियों के सदस्यों में से किसी एक को एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है।

1.2 निर्णय लेने की प्रक्रिया और वोटिंग पावर

GST परिषद के निर्णय लोकतांत्रिक और संघीय भावना पर आधारित हैं। परिषद की बैठक हेतु कुल सदस्यों का **50% गणपूर्ति (Quorum)** होना अनिवार्य है। निर्णयों के लिए उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के **तीन-चौथाई (75%) भारित बहुमत** की आवश्यकता होती है।

वोटों का भारित मूल्य (Weightage):

- **केंद्र सरकार का वोट:** कुल डाले गए मतों का **एक-तिहाई (1/3)** भार।
- **सभी राज्य सरकारों के संयुक्त वोट:** कुल डाले गए मतों का **दो-तिहाई (2/3)** भार।

1.3 परिषद के विनिर्दिष्ट विधिक कार्य

GST परिषद निम्नलिखित विषयों पर केंद्र और राज्यों को सिफारिशें करती है:

- वे कर, उपकर और अधिभार जिन्हें GST में समाहित किया जाना है।
- वे वस्तुएं और सेवाएं जिन्हें GST से छूट दी जा सकती है।
- मॉडल GST कानून, उगाही के सिद्धांत और अंतर-राज्यीय व्यापार (IGST) का आवंटन।
- कर की दरें (Slabs) - वर्तमान में मुख्य रूप से 5%, 12%, 18% और 28%।
- किसी विशेष प्राकृतिक आपदा के दौरान अतिरिक्त संसाधन जुटाने हेतु विशेष दरें।

2. वित्त आयोग (Finance Commission): संवैधानिक अधिदेश

संविधान के **अनुच्छेद 280** के तहत राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक पांच वर्ष या उससे पहले एक 'वित्त आयोग' का गठन किया जाता है। यह एक अर्ध-न्यायिक और सलाहकारी निकाय है।

2.1 संरचना और नियुक्ति

आयोग में **एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य** होते हैं जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। संसद कानून द्वारा इनकी योग्यताओं और चयन की विधि निर्धारित करती है।

- **अध्यक्ष:** सार्वजनिक मामलों का अनुभव रखने वाला व्यक्ति।
- **सदस्य:** उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की योग्यता रखने वाला, सरकार के वित्त और खातों का विशेषज्ञ, वित्तीय मामलों और प्रशासन का व्यापक अनुभव रखने वाला, या अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञाता।

2.2 आयोग के मुख्य परामर्शदात्री कार्य

- केंद्र और राज्यों के बीच करों के 'शुद्ध आगमों' (Net Proceeds) का वितरण।
- राज्यों के बीच करों के हिस्से का आवंटन (क्षैतिज वितरण)।
- भारत की संचित निधि से राज्यों को दी जाने वाली 'सहायता अनुदान' (Grants-in-aid) के सिद्धांत।
- राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर पंचायतों और नगरपालिकाओं के संसाधनों की पूर्ति हेतु राज्य की संचित निधि के संवर्धन के उपाय।

3. 16वां वित्त आयोग: अद्यतन सांख्यिकी और संदर्भ शर्तें (ToR)

केंद्र सरकार ने 31 दिसंबर, 2023 को **अरविंद पनगढ़िया** (नीति आयोग के पूर्व उपाध्यक्ष) की अध्यक्षता में **16वें वित्त आयोग** के गठन की अधिसूचना जारी की है। यह आयोग अपनी रिपोर्ट **31 अक्टूबर, 2025** तक प्रस्तुत करेगा, जो 1 अप्रैल, 2026 से 5 वर्षों की अवधि के लिए प्रभावी होगी।

3.1 16वें वित्त आयोग की मुख्य संदर्भ शर्तें (Terms of Reference)

- विभाज्य पूल (Divisible Pool) का केंद्र और राज्यों के बीच बंटवारा।
- अनुच्छेद 275 के तहत राज्यों को राजस्व सहायता अनुदान के सिद्धांतों का निर्धारण।
- आपदा प्रबंधन पहल हेतु वर्तमान वित्तपोषण व्यवस्थाओं की समीक्षा।
- पंचायतों और नगरपालिकाओं हेतु संसाधनों के पूरकता उपायों की सिफारिश।

3.2 15वें वित्त आयोग (एन.के. सिंह) का सांख्यिकीय आधार (तुलना हेतु)

चूंकि 16वें आयोग की सिफारिशें प्रतीक्षित हैं, वर्तमान में 15वें वित्त आयोग के मानक प्रभावी हैं:

- **लंबवत हस्तांतरण (Vertical Devolution):** केंद्रीय करों में राज्यों की हिस्सेदारी **41%** (जम्मू-कश्मीर और लद्दाख के पुनर्गठन के कारण 1% की कमी)।
- **क्षैतिज वितरण के मानक (Horizontal Distribution Criteria):**
 1. आय का अंतर (Income Distance): 45% भार।
 2. जनसंख्या (2011 की जनगणना): 15% भार।
 3. क्षेत्रफल (Area): 15% भार।
 4. जनसांख्यिकीय प्रदर्शन (Demographic Performance): 12.5% भार।
 5. वन और पारिस्थितिकी (Forest and Ecology): 10% भार।

6. कर प्रयास (Tax Effort): 2.5% भार।

4. तुलनात्मक विश्लेषण तालिका: GST परिषद बनाम वित्त आयोग

विनियामक आयाम	वस्तु एवं सेवा कर (GST) परिषद	वित्त आयोग (Finance Commission)
संवैधानिक अनुच्छेद	अनुच्छेद 279A	अनुच्छेद 280
प्रकृति	स्थायी संघीय निकाय (सतत गतिक)	अस्थायी निकाय (प्रत्येक 5 वर्ष में गठित)
प्रतिनिधित्व	केंद्र और सभी राज्यों का प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रतिनिधित्व।	स्वतंत्र विशेषज्ञों का समूह (राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त)।
मुख्य फोकस	अप्रत्यक्ष करों (GST) का नियमन और दर निर्धारण।	करों का बंटवारा और सहायता अनुदान का निर्धारण।
निर्णय शक्ति	75% बहुमत द्वारा बाध्यकारी निर्णय।	राष्ट्रपति को दी जाने वाली सलाहकारी सिफारिशें।

5. राजकोषीय संघवाद में सहायता अनुदान (Grants-in-aid)

संविधान में राज्यों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के दो प्रमुख विन्यास हैं:

- **विधिक अनुदान (Statutory Grants - अनुच्छेद 275):** यह संसद द्वारा उन राज्यों को दिया जाता है जिन्हें वास्तव में वित्तीय सहायता की आवश्यकता है। यह प्रत्येक राज्य के लिए भिन्न हो सकता है और भारत की संचित निधि पर भारित होता है।
- **विवेकाधीन अनुदान (Discretionary Grants - अनुच्छेद 282):** संघ या राज्य किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अनुदान दे सकते हैं। यह योजनागत व्यय और तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए उपयोग किया जाता है।

6. आधुनिक वित्तीय संघवाद की चुनौतियां और प्रशासनिक गतिकी

वर्तमान वित्तीय पारिस्थितिकी में केंद्र और राज्यों के बीच कई संवेदी मुद्दे उभरे हैं:

- **उपकर और अधिभार (Cess and Surcharge):** केंद्र सरकार द्वारा लगाए जाने वाले उपकर विभाज्य पूल (Divisible Pool) का हिस्सा नहीं होते, जिससे राज्यों को वास्तविक राजस्व में कम हिस्सा मिलता है।
- **GST क्षतिपूर्ति (Compensation):** राज्यों को GST लागू होने से हुए राजस्व नुकसान की भरपाई की अवधि और ऋण चुकौती को लेकर विधिक गतिरोध।
- **वित्तीय अनुशासन:** राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबंधन (FRBM) अधिनियम के तहत राज्यों की उधारी सीमाओं पर केंद्र का विनियामक नियंत्रण।

7. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **विभाज्य पूल (Divisible Pool):** केंद्रीय करों का वह हिस्सा जिसे केंद्र और राज्यों के बीच वितरित किया जाना अनिवार्य है।
- **क्षैतिज हस्तांतरण (Horizontal Devolution):** करों के कुल हिस्से का विभिन्न राज्यों के बीच उनकी जनसंख्या, क्षेत्रफल और प्रदर्शन के आधार पर वितरण।

- **शुद्ध आगम (Net Proceeds):** कर से प्राप्त कुल राशि में से संग्रहण की लागत को घटाने के बाद बची हुई राशि।
- **भारित बहुमत (Weighted Majority):** वह मतदान प्रणाली जहाँ अलग-अलग सदस्यों के मतों का मूल्य उनके विनिर्दिष्ट प्रशासनिक भार के अनुसार भिन्न होता है।
- **राजकोषीय समेकन (Fiscal Consolidation):** सरकार के घाटे और ऋण के स्तर को कम करने की नीतिगत प्रक्रिया।

8. वित्तीय संघवाद का संस्थागत ढांचा: एक संक्षिप्त विवरण

तालिका: राजस्व स्रोतों का संवैधानिक आवंटन

कर की प्रकृति	अनुच्छेद	निर्धारणकर्ता	संग्रहकर्ता	उपभोगकर्ता
स्टांप शुल्क	268	केंद्र	राज्य	राज्य
अंतर्राज्यीय व्यापार कर	269	केंद्र	केंद्र	राज्यों को सौंपा जाना
आयकर (विभाज्य)	270	केंद्र	केंद्र	केंद्र और राज्यों के बीच वितरण
GST (अंतर्राज्यीय)	269A	GST परिषद	केंद्र	केंद्र और राज्य (आनुपातिक)

9. सहकारी संघवाद में नीति आयोग की सहायक भूमिका

यद्यपि नीति आयोग के पास वित्तीय आवंटन की शक्ति नहीं है (जो पहले योजना आयोग के पास थी), यह वित्तीय संघवाद में 'सहयोगी मंच' के रूप में कार्य करता है। नीति आयोग की शासी परिषद (Governing Council) में प्रधानमंत्री और सभी राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल होते हैं, जहाँ बजटीय प्राथमिकताओं और विकास लक्ष्यों पर आम सहमति बनाई जाती है। यह वित्त आयोग की सिफारिशों को लागू करने हेतु एक प्रशासनिक पारिस्थितिकी तंत्र निर्मित करता है।

10. सारांश

भारतीय वित्तीय संघवाद एक 'मेटासोमैटिक रूपांतरण' के दौर से गुजर रहा है। GST परिषद ने जहाँ अप्रत्यक्ष करों के क्षेत्र में राज्यों को निर्णय प्रक्रिया का हिस्सा बनाकर "वन नेशन, वन टैक्स" को विधिक स्थायित्व दिया है, वहीं 16वां वित्त आयोग बदलती वैश्विक आर्थिक परिस्थितियों और राज्यों की बढ़ती सामाजिक-आर्थिक आकांक्षाओं के बीच संसाधनों के न्यायसंगत पुनर्वितरण की चुनौती का सामना कर रहा है।

इन दोनों संस्थाओं का कुशल संचालन ही यह सुनिश्चित करता है कि भारत का संघीय ढांचा न केवल प्रशासनिक रूप से अभेद्य बना रहे, बल्कि राजकोषीय रूप से भी आत्मनिर्भर और गतिशील बना रहे। आगामी परीक्षाओं हेतु GST परिषद के वोटिंग मूल्य (1/3 और 2/3) तथा वित्त आयोग के वर्तमान सांख्यिकीय मानकों (41% हस्तांतरण) का गहन बोध अनिवार्य है।

अध्याय 25: आपातकालीन प्रावधान (अनुच्छेद 352-360) और संघीय ढांचे पर उनका सामरिक प्रभाव प्रतिरूप

भारतीय संविधान के भाग XVIII में अनुच्छेद 352 से 360 तक आपातकालीन प्रावधानों का विस्तृत विन्यास किया गया है। ये प्रावधान केंद्र सरकार को किसी भी असामान्य परिस्थिति से प्रभावी ढंग से निपटने हेतु अभेद्य वैधानिक शक्ति प्रदान करते हैं। इनका मूल उद्देश्य राष्ट्र की संप्रभुता, एकता, अखंडता, लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था और संविधान की सुरक्षा करना है। आपातकाल के दौरान भारत का संघीय ढांचा पूरी तरह से एकात्मक ढांचे में परिवर्तित हो जाता है, जो भारतीय संविधान की एक अनूठी और रक्षात्मक विशेषता है।

1. राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352): विधिक आधार एवं प्रक्रिया

अनुच्छेद 352 के तहत राष्ट्रपति 'राष्ट्रीय आपातकाल' की घोषणा कर सकते हैं यदि उन्हें विश्वास हो कि युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा को गंभीर खतरा है।

1.1 घोषणा के विनिर्दिष्ट आधार

- **युद्ध एवं बाह्य आक्रमण:** इसे 'बाह्य आपातकाल' कहा जाता है।
- **सशस्त्र विद्रोह:** इसे 'आंतरिक आपातकाल' की संज्ञा दी गई है। उल्लेखनीय है कि 44वें संविधान संशोधन (1978) द्वारा 'आंतरिक अशांति' शब्द को 'सशस्त्र विद्रोह' से विस्थापित किया गया।
- **लिखित परामर्श की अनिवार्यता:** 44वें संशोधन ने यह वैधानिक शर्त जोड़ी कि राष्ट्रपति आपातकाल की घोषणा तभी करेंगे जब उन्हें मंत्रिमंडल (प्रधानमंत्री और कैबिनेट स्तर के मंत्रियों) का लिखित प्रस्ताव प्राप्त हो।

1.2 संसदीय अनुमोदन और सांख्यिकीय अवधि

- **समय सीमा:** उद्घोषणा के एक माह के भीतर संसद के दोनों सदनों द्वारा इसका अनुमोदन होना विधिक रूप से अनिवार्य है।
- **अनुमोदन का बहुमत:** संसद के प्रत्येक सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत (विशेष बहुमत) द्वारा अनुमोदन आवश्यक है।
- **अवधि:** एक बार अनुमोदित होने पर यह 6 माह तक जारी रहता है। प्रत्येक 6 माह पर संसद के अनुमोदन से इसे अनिश्चित काल तक विस्तारित किया जा सकता है।
- **वापसी:** राष्ट्रपति किसी भी समय दूसरी उद्घोषणा द्वारा इसे वापस ले सकते हैं। इसके अलावा, यदि लोकसभा साधारण बहुमत से इसे वापस लेने का संकल्प पारित कर दे, तो राष्ट्रपति इसे समाप्त करने हेतु विवश हैं।

2. राष्ट्रीय आपातकाल के सामरिक एवं प्रशासनिक प्रभाव

राष्ट्रीय आपातकाल की स्थिति केंद्र-राज्य संबंधों और नागरिकों के मौलिक अधिकारों के विन्यास को व्यापक रूप से प्रभावित करती है।

2.1 केंद्र-राज्य संबंधों पर प्रभाव

- **कार्यपालिका:** केंद्र सरकार किसी भी विषय पर राज्य को प्रशासनिक निर्देश देने हेतु विधिक रूप से सशक्त हो जाती है। राज्य सरकारें निलंबित नहीं होतीं, परंतु वे केंद्र के पूर्ण नियंत्रण में आ जाती हैं।
- **विधायिका:** संसद को राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का संप्रभु अधिकार प्राप्त हो जाता है। ऐसे कानून आपातकाल की समाप्ति के 6 माह बाद निष्प्रभावी हो जाते हैं।
- **वित्तीय:** राष्ट्रपति केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व के संवैधानिक वितरण (अनुच्छेद 268 से 279) को संशोधित कर सकते हैं।

2.2 लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के कार्यकाल पर प्रभाव

- संसद कानून बनाकर लोकसभा के सामान्य कार्यकाल (5 वर्ष) को एक बार में 1 वर्ष के लिए बढ़ा सकती है। आपातकाल की समाप्ति के बाद यह विस्तार 6 माह से अधिक नहीं हो सकता। इसी प्रकार राज्यों की विधानसभाओं का कार्यकाल भी बढ़ाया जा सकता है।

2.3 मौलिक अधिकारों पर प्रभाव (अनुच्छेद 358 और 359)

- **अनुच्छेद 358:** इसके तहत युद्ध या बाह्य आक्रमण के आधार पर आपातकाल घोषित होने पर अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त छह स्वतंत्रताएं स्वतः निलंबित हो जाती हैं।
- **अनुच्छेद 359:** राष्ट्रपति आदेश द्वारा अन्य मौलिक अधिकारों (अनुच्छेद 20 और 21 को छोड़कर) के प्रवर्तन हेतु न्यायालय जाने के अधिकार को निलंबित कर सकते हैं। 44वें संशोधन ने स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 20 और 21 को किसी भी स्थिति में निलंबित नहीं किया जा सकता।

3. राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356): राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता

अनुच्छेद 356 के तहत राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाया जाता है, जिसे 'राज्य आपातकाल' या 'संवैधानिक आपातकाल' भी कहा जाता है।

3.1 विधिक आधार (अनुच्छेद 356 एवं 365)

- **अनुच्छेद 356:** यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल की रिपोर्ट से या अन्यथा यह समाधान हो जाए कि राज्य की स्थिति ऐसी है कि शासन संविधान के अनुरूप नहीं चलाया जा सकता।
- **अनुच्छेद 365:** यदि कोई राज्य केंद्र के विधिक निर्देशों का पालन करने में विफल रहता है, तो राष्ट्रपति इसे संवैधानिक तंत्र की विफलता मानकर अनुच्छेद 356 का प्रयोग कर सकते हैं।

3.2 संसदीय अनुमोदन और सांख्यिकीय सीमा

- **समय सीमा:** उद्घोषणा के दो माह के भीतर संसद के दोनों सदनों द्वारा साधारण बहुमत से अनुमोदन आवश्यक है।
- **अवधि:** एक बार अनुमोदित होने पर यह 6 माह तक प्रभावी रहता है। इसे अधिकतम 3 वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है।
- **1 वर्ष से अधिक विस्तार की शर्तें:** 44वें संशोधन के अनुसार, 1 वर्ष के बाद विस्तार तभी होगा जब (i) पूरे भारत या राज्य में राष्ट्रीय आपातकाल लागू हो, और (ii) चुनाव आयोग प्रमाणित करे कि राज्य में चुनाव कराना कठिन है।

3.3 प्रशासनिक परिणाम

- राष्ट्रपति राज्य सरकार (मंत्रिपरिषद) को भंग कर देते हैं और राज्यपाल के माध्यम से प्रशासन का संचालन करते हैं।
- राज्य विधानसभा या तो निलंबित कर दी जाती है या भंग कर दी जाती है। राज्य के विधायी कार्य संसद द्वारा निष्पादित किए जाते हैं।

4. वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360): विनियामक संरचना

यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाए कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे भारत या उसके किसी भाग की वित्तीय स्थिरता या साख को खतरा है, तो वह वित्तीय आपातकाल की घोषणा कर सकते हैं।

4.1 अनुमोदन एवं अवधि

- संसद के दोनों सदनों द्वारा दो माह के भीतर साधारण बहुमत से अनुमोदन अनिवार्य है।
- एक बार अनुमोदित होने पर यह अनिश्चित काल तक जारी रहता है जब तक कि इसे वापस न लिया जाए। इसके विस्तार हेतु बार-बार संसदीय अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होती।

4.2 वित्तीय परिणाम एवं प्रशासनिक निर्देश

- केंद्र राज्यों को वित्तीय औचित्य के सिद्धांतों का पालन करने हेतु निर्देश दे सकता है।
- राष्ट्रपति राज्य की सेवा में कार्यरत सभी या किसी वर्ग के व्यक्तियों (उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों सहित) और संघ की सेवा में कार्यरत व्यक्तियों (उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों सहित) के वेतन और भत्तों में कटौती का आदेश दे सकते हैं।
- राज्यों द्वारा पारित सभी धन विधेयकों को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखने का निर्देश दिया जा सकता है।

5. आपातकालीन प्रावधानों का तुलनात्मक सांख्यिकीय विश्लेषण

सारणी 25.1: आपातकाल के प्रकार और विनियामक अंतर

विशेषता	राष्ट्रीय आपातकाल (अनु. 352)	राष्ट्रपति शासन (अनु. 356)	वित्तीय आपातकाल (अनु. 360)

अनुमोदन अवधि	घोषणा के 1 माह के भीतर	घोषणा के 2 माह के भीतर	घोषणा के 2 माह के भीतर
संसदीय बहुमत	विशेष बहुमत (2/3)	साधारण बहुमत (50%+)	साधारण बहुमत (50%+)
अधिकतम अवधि	अनिश्चित काल (प्रत्येक 6 माह पर अनुमोदन)	अधिकतम 3 वर्ष	अनिश्चित काल (वापसी तक)
राज्यों की स्थिति	राज्य सरकारें कार्यरत रहती हैं (केंद्र के अधीन)	राज्य सरकारें भंग/बर्खास्त कर दी जाती हैं	वित्तीय निर्देशों का पालन अनिवार्य
मौलिक अधिकार	अनु. 19, 20, 21 को छोड़कर प्रभावित हो सकते हैं	कोई प्रभाव नहीं पड़ता	कोई प्रभाव नहीं पड़ता
घोषणा की संख्या	भारत में अब तक 3 बार (1962, 1971, 1975)	125 से अधिक बार (विभिन्न राज्यों में)	अब तक एक बार भी नहीं

6. आपातकाल और संघीय ढांचे पर सामरिक प्रभाव प्रतिरूप

आपातकालीन प्रावधानों का उद्देश्य यद्यपि सुरक्षात्मक है, परंतु इनका संघीय ढांचे पर गहरा सामरिक प्रभाव पड़ता है।

- **संघात्मक से एकात्मक में परिवर्तन:** सामान्य समय में शक्तियाँ विभाजित रहती हैं, परंतु आपातकाल में केंद्र सर्वशक्तिमान हो जाता है। यह परिवर्तन बिना किसी औपचारिक संविधान संशोधन के संभव है
- **न्यायिक पुनरावलोकन और एस.आर. बोम्मई वाद (1994):** उच्चतम न्यायालय ने इस ऐतिहासिक निर्णय में स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति की उद्घोषणा न्यायिक समीक्षा के अधीन है। न्यायालय ने यह भी व्यवस्था दी कि राज्य विधानसभा को संसद के अनुमोदन के बाद ही भंग किया जाना चाहिए।
- **सहयोगपूर्ण संघवाद का निलंबन:** आपातकाल की स्थिति में राज्यों की विधायी और प्रशासनिक स्वायत्तता केंद्र के विवेक पर निर्भर हो जाती है, जो संघीय संतुलन को अस्थायी रूप से विस्थापित कर देता है।

7. महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं विधिक डेटा कड़ियाँ

- **प्रथम राष्ट्रीय आपातकाल:** 1962 में नेफा (अरुणाचल प्रदेश) पर चीनी आक्रमण के कारण।
- **द्वितीय राष्ट्रीय आपातकाल:** 1971 में पाकिस्तान द्वारा भारत के विरुद्ध अघोषित युद्ध के कारण।
- **तृतीय राष्ट्रीय आपातकाल:** 1975 में 'आंतरिक अशांति' के आधार पर लगाया गया, जो 44वें संशोधन का मुख्य कारण बना।
- **पंजाब में राष्ट्रपति शासन:** सर्वप्रथम 1951 में पंजाब में अनुच्छेद 356 का प्रयोग किया गया था।

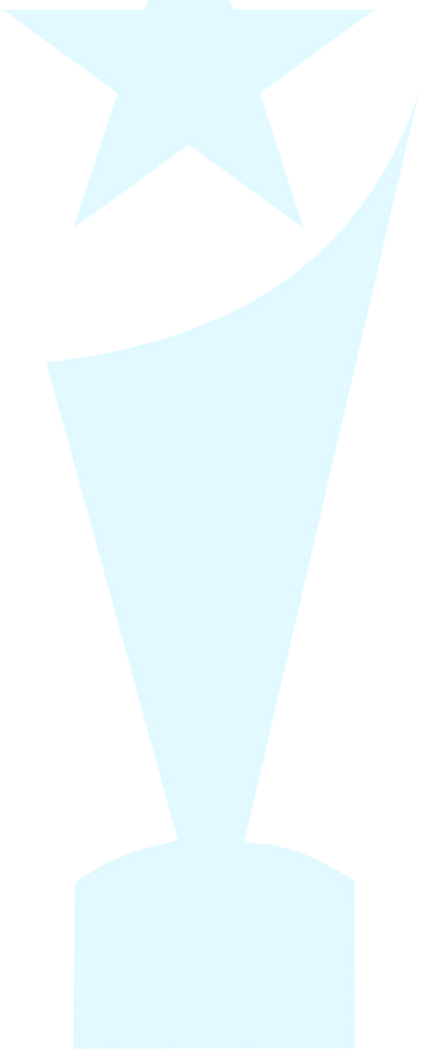
8. विषय केंद्रित पारिभाषिक शब्दावली (Keywords)

- **सशस्त्र विद्रोह:** 44वें संशोधन द्वारा आंतरिक आपातकाल का एकमात्र आधार।
- **विशेष बहुमत:** सदन की कुल सदस्य संख्या का 50% से अधिक और उपस्थित/मतदान का 2/3।

- **भविष्यलक्षी निलंबन:** अनुच्छेद 359 के तहत राष्ट्रपति द्वारा मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन को रोकना।
- **वित्तीय औचित्य:** आर्थिक संकट के दौरान सरकारी व्यय और वेतन में विधिक कटौती के मानक।
- **न्यायिक समीक्षा:** राष्ट्रपति शासन के आधारों की वैधानिक जांच करने की न्यायालय की शक्ति।

9. निष्कर्ष: विधिक संतुलन एवं विन्यास

आपातकालीन प्रावधान भारतीय संविधान की वह अभेद्य दीवार हैं जो संकट के समय राष्ट्र की संप्रभुता को सुरक्षा प्रदान करती हैं। यद्यपि ये प्रावधान संघीय ढांचे को संकुचित करते हैं, परंतु 44वें संविधान संशोधन और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों (बोम्मई वाद) ने इनके दुरुपयोग को रोकने हेतु कड़े वैधानिक अवरोध स्थापित किए हैं। अनुच्छेद 20 और 21 की अक्षुण्णता यह सुनिश्चित करती है कि किसी भी असाधारण परिस्थिति में नागरिकों के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का ह्रास न हो। ये प्रावधान भारत के 'मजबूत केंद्र' के दर्शन को व्यावहारिक रूप प्रदान करते हैं।



wincompete